समरथ

जुलाई–अगस्त 2015 ◆ नई दिल्ली

हिरोशिमा-नागासाकी

6 अगस्त & 9 अगस्त

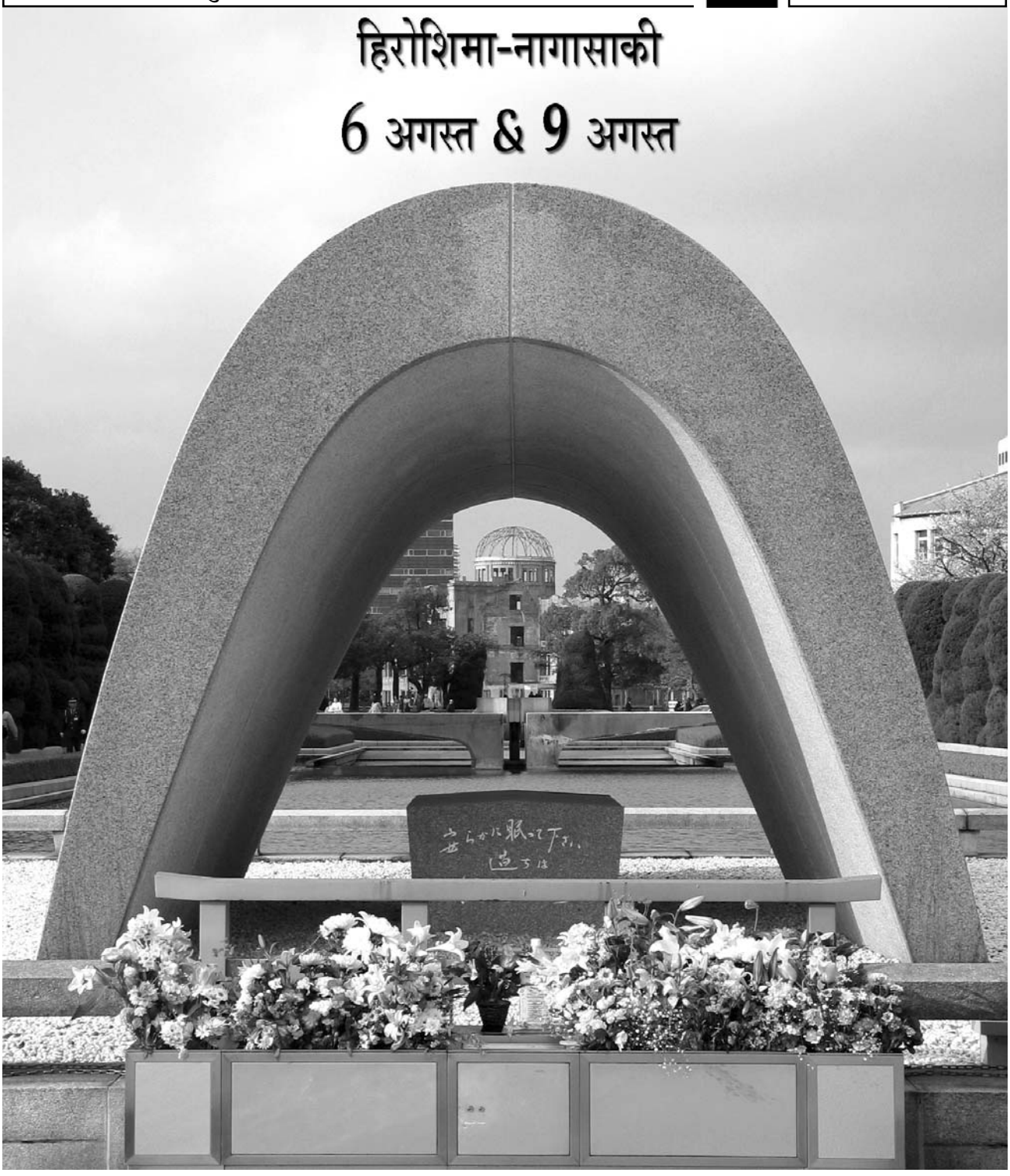

नाहि तो जनम नसाई

मौसम का मिजाज़ कठोर से कठोर होता जा रहा है। आकाश की ओर टकटकी लगाये नजरे थक रही हैं। कहीं कोई बादल का टुकड़ा नहीं जो आस जगाए। धरती में दरारें झांकने लगी हैं। बिरवे कुम्हला रहे हैं। बारिश के आसार दूर-दूर तक नहीं दिखते।

जब जरूरत नहीं थी तब इतनी बारिश कि गेहूं, सरसों सब बरबाद हो गए कटी फसलें, कटने को तैयार फसलें बारिश की वह मार बरदाश्त नहीं कर पाईं। और अब जब बारिश की जरूरत है तो आकाश नम ही नहीं हो रहा है। सावन सूखा-सूखा बीत गया। खेतिहर आबादी की तकलीफों के और बढ़ाती मौसम की यह मार कैसे झेली जाएगी।

मन प्राण से, सपनों के उछाह से बारिश का क्या रिश्ता है इसे उजागर करते इन गीतों के साथ समरथ का यह नया अंक।

लौट नहीं जाना

दिनेश सिंह

टपरे की ओरी के नीचे
'मुनिया' के हाथों से सींचे
नेहा के बीज गड़े हैं
मुनिया के प्राण जड़े हैं
लौट नहीं जाना जी, बादल!

भीतर ये प्राण पसीजेंगे
अपने ही जल से भीजेंगे
चुपके-चुपके, नीचे-नीचे
मन की नाजुक पर्तें तोड़कर
वे देखो फूट पड़े हैं
लौट नहीं जाना जी, बादल!

मुनिया के साथ ये बढ़ेंगे
ओरी के पार जा चढ़ेंगे
पोरों से कोर-कोर मींचे
छोड़ेंगे कभी न छुड़ाये
ये जन्मों के बिछुड़े हैं
लौट नहीं जाना जी, बादल!

टपरे पर फूल-फूल होंगे
पत्ते तो बस फिजूल होंगे
फूलों के बिछेंगे गलीचे
फूलों पर फल उतने होंगे
जितने सपने उजड़े हैं
लौट नहीं जाना जी, बादल!

आना जी बादल जरूर

केदारनाथ सिंह

धान उगेंगे कि प्रान उगेंगे
उगेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरूर!
चंदा को बांधेंगे कच्ची कलगियों
सूरज को सूखी रेत में
आना जी बादल जरूर!

आगे पुकारेगी सूनी डगरिया
पीछे झुके बन-बेंत
संझा पुकारेंगी पीली अखड़ियां
भोर हुए धन खेत
आना जी बादल जरूर!

धान कँपेंगे कि प्रान कँपेंगे
कँपेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरूर!

धूप धरे तुलसी बन झरेंगे
सांझ घिरे तर कनेर
पूजा की बेला में ज्वार झरेंगे
धान-दिये की बेर
आना जी बादल जरूर!
धान पकेंगे कि प्रान पकेंगे
पकेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरूर!
झीलों के पानी खजूर हिलेंगे
खेतों में पानी बबूल
पछुआ के हाथों में शाखें हिलेंगे
पुरवा के हाथों में फूल
आना जी बादल जरूर!

धान तुलेंगे कि प्रान तुलेंगे
तुलेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरूर!

संसार सागर के नायक

■ अनुपम मिश्र

कौन थे अनाम लोग?

सैकड़ों, हजारों तालाब अचानक शून्य से प्रकट नहीं हुए थे। इनके पीछे एक इकाई थी बनवाने वालों की, तो दहाई थी बनाने वालों की। यह इकाई, दहाई मिलकर सैकड़ा, हजार बनती थी। लेकिन पिछले 200 बरसों में नए किस्म की थोड़ी सी पढ़ाई पढ़ गए समाज ने इस इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार को शून्य ही बना दिया। इस नए समाज के मन में इतनी भी उत्सुकता नहीं बची कि उससे पहले के दौर में इतने सारे तालाब भला कौन बनाता था। उसने इस तरह के काम को करने के लिए जो नया ढांचा खड़ा किया है, आई.आई.टी. का, सिविल इंजीनियरिंग का, उस पैमाने से, उस गज से भी उसने पहले हो चुके इस काम को नापने की कोई कोशिश नहीं की।

वह अपने गज से भी नापता तो कम से कम उसके मन में ऐसे सवाल तो उठते कि उस दौर की आई.आई.टी. कहां थी? कौन थे उसके निर्देशक? कितना बजट था, कितने सिविल इंजीनियर निकलते थे? लेकिन उसने सब को गए जमाने का गया, बीता काम माना और पानी के प्रश्न को नए ढंग से हल करने का वायदा भी किया और दावा भी। गांवों, कस्बों की तो कौन कहे, बड़े शहरों के नलों में चाहे जब बहने वाला सन्नाटा इस वायदे और दावे पर सबसे मुखर टिप्पणी है। इस समय के समाज के दावों को इसी समय के गज से नापें तो कभी दावे छोटे पड़ते हैं तो कभी गज ही छोटा निकल आता है।

इस गज को अभी यही छोड़ें और थोड़ा पीछे लौटें। आज जो अनाम हो गए, उनका एक समय में बड़ा नाम था। पूरे देश में तालाब बनते थे और बनाने वाले भी पूरे देश में थे। कहीं यह विद्या जाति के विद्यालय में सिखाई जाती थी तो कहीं यह जात से हट कर एक विशेष पांत भी बन जाती थी। बनाने वाले लोग कहीं एक जगह बसे मिलते थे तो कहीं वे घूम-घूम कर इस काम को करते थे।

गजधर एक सुन्दर शब्द है, तालाब बनाने वालों को आदर के साथ याद करने के लिए। राजस्थान के कुछ भागों में यह शब्द आज भी बाकी है। गजधर यानी जो गज को धारण करता है। और गज वही जो नापने के काम आता है। लेकिन फिर भी समाज में इन्हें तीन हाथ की लोहे की छड़ लेकर घूमने वाला मिस्त्री नहीं माना। गजधर तो समाज की गहराई नाप ले - उसे ऐसा दर्जा दिया गया है।

गजधर वास्तुकार थे। गांव- समाज हो या नगर-समाज उसके नव निर्माण की, रख-रखाव की जिम्मेदारी गजधर निभाते थे। नगर नियोजन से लेकर छोटे निर्माण के काम गजधर के कंधों पर टिके थे। वे योजना बनाते थे, कुल काम की लागत निकालते थे, काम में लगने वाली सारी सामग्री जुटाते थे और इस सबके बदले वे अपने जजमान से ऐसा कुछ नहीं मांग बैठते थे, जो वे दे न पाएं। लोग भी ऐसे थे कि उनसे जो कुछ बनता, वे गजधर को भेंट कर देते।

काम पूरा होने पर पारिश्रमिक के अलावा गजधर को सम्मान भी मिलता था। सरोपा भेंट करना अब शायद सिर्फ सिख परंपरा में ही बचा है पर अभी कुछ समय पहले तक राजस्थान में गजधर को गृहस्थ की ओर से बड़े आदर के साथ सरोपा भेंट किया जाता रहा है। पगड़ी बांधने के अलावा चांदी और कभी-कभी सोने के बटन भी भेंट दिए जाते थे। जमीन भी उनके नाम की जाती थी। पगड़ी पहनाए जाने के बाद गजधर अपने साथ काम करने वाली टोली के कुछ और लोगों का नाम बताते थे, उन्हें भी पारिश्रमिक के अलावा यथाशक्ति कुछ न कुछ भेंट दी जाती थी। कृतज्ञता का यह भाव तालाब बनने के बाद होने वाले भोज में विशेष रूप से देखने में आता था।

गजधर हिन्दू थे और बाद में मुसलमान भी। सिलावट या सिलावटा नामक एक जाति वास्तुकला में बहुत निष्णात हुई है। सिलावटा शब्द शिला यानी पत्थर से बना है। सिलावटा भी गजधरों की तरह दोनों धर्मों में थे। आबादी के अनुपात में उनकी संख्या काफी थी। इनके अपने मोहल्ले थे। आज भी राजस्थान के पुराने शहरों में सिलावटपाड़ा मिल जाएंगे। सिंध क्षेत्र में, कराची में भी सिलावटों का भरा- पूरा मोहल्ला है। गजधर और सिलावटा- एक ही काम को करने वाले ये दो नाम कहीं-कहीं एक ही हो जाते थे। जैसलमेर और सिंध में सिलवटों के नायक ही गजधर कहलाते थे। कराची में भी इन्हें सम्मान से देखा जाता था। बंटवारे के बाद पाकिस्तान मंत्रिमंडल में भी एक सिलावट-हाकिम मोहम्मद गजधर की नियुक्ति हुई थी।

इनकी एक धारा तोमर वंश तक जाती थी और समाज के निर्माण के सबसे ऊंचे पद को भी छूती रही है। अनंगपाल तंवर ने भी कभी दिल्ली पर झंडा लहराया था।

अभ्यस्त आंखों का सुंदर उदाहरण थे गजधर। गुरु- शिष्य परंपरा से काम सिखाया जाता था। नए हाथ को पुराना हाथ इतना सिखाता, इतना उठाता कि वह कुछ समय बाद जोड़िया बन जाता। जोड़िया यानी गजधर का विश्वसनीय साथी। एक गजधर के साथ कई जोड़िया होते थे। कुछ अच्छे जोड़ियों वाले गजधर स्वयं इतने ऊपर उठ जाते थे कि बस फिर उनका नाम ही गजधर रह जाता, पर गज उनका छूट जाता। अच्छे गजधर की एक परिभाषा यही थी कि वे औजारों को हाथ नहीं लगाते। सिर्फ जगह देखकर निर्णय लेते कि कहां क्या करना है। वे एक जगह बैठ जाते और सारा काम उनके मौखिक निर्देश पर चलता रहता।

औजारों का उपयोग करते-करते इतना ऊपर उठना कि फिर उनकी जरूरत ही नहीं रहे- यह एक बात है। पर कभी औजारों को

हाथ ही नहीं लगाना- यह दूसरी बात है। ऐसे सिद्ध सिरभाव कहलाते थे। सिरभाव किसी भी औजार के बिना पानी भी ठीक जगह बताते थे। कहते हैं भाव आता था उन्हें, यानी बस पता चल जाता था। सिरभाव कोई जाति विशेष से नहीं होते थे। बस किसी-किसी को यह सिद्धि मिल जाती थी। जलसूंघा यानी भूजल को सूंघ कर बताने वाले लोग भी सिरभाव जैसे ही होते थे पर वे भी जल की तरंगों के संकेत को आम या जामुन की लकड़ी की सहायता से पकड़ कर पानी का पता बताते थे। यह काम आज भी जारी है। ट्यूबवैल खोलने वाली कंपनियां पहले अपने यंत्र से जगह चुनती हैं फिर इन्हें बुलाकर और पक्का कर लेती हैं कि पानी मिलेगा या नहीं। सरकारी क्षेत्रों में भी बिना कागज पर दिखाए इनकी सेवाएं ले ली जाती हैं।

सिलावटा शब्द मध्य प्रदेश तक जाते-जाते एक मात्रा खोकर सिलावट बन जाता है पर गुण ज्यों के त्यों रहते हैं। कहीं-कहीं मध्य-देश में सिलाकार भी थे। गुजरात में भी इनकी अच्छी आबादी है। वहां ये सलाट कहलाते हैं। इनमें हीरा सलाट पत्थर पर अपने काम के कारण बहुत ही प्रसिद्ध हुए हैं।

कच्छ में गजधर गईधर हो गए हैं। उनका वंशवृक्ष इंद्र देवता के पुत्र जयंत से प्रारंभ होता है। गजधरों का एक नाम सूत्रधार भी रहा है। यही बाद में, गुजरात में ठार और देश के कई भागों में सुथार हो गया।

गजधरों को एक शास्त्रीय नाम स्थपति भी था, जो थवई की तरह आज भी प्रचलित है।

पथरोट और टकारी भी पत्थर पर होने वाले सभी कामों के अच्छे जानकार थे और तालाब बनाने के काम में भी लगते थे। मध्य प्रदेश में पथरौटा नाम के गांव और मोहल्ले आज भी इनकी याद दिलाते हैं। टकारी दूर दक्षिण तक फैले थे और इनके मोहल्ले टकेरवाड़ी कहलाते थे।

संसार है माटी का और इस माटी का पूरा संसार जानने वालों की कमी नहीं थी। वे मटकूट थे तो कहीं मटकूड़ा और जहां ये बसते थे, वे गांव मटकूली कहलाते थे। सोनकर और सुनकर शब्द सोने का काम करने वालों के लिए थे। पर यह सोना सोना नहीं, मिट्टी ही था। सोनकर या सुनकर राजलहरिया भी कहलाते थे। ये अपने को रघुवंश के सम्राट सगर के बेटों से जोड़ते थे। अश्वमेध यज्ञ के लिए छोड़े गए घोड़ों की चोरी हो जाने पर सगर पुत्रों ने उसको ढूंढ़ निकालने के लिए सारी पृथ्वी खोद डाली थी और अंत में कपिल मुनि के क्रोध के पात्र बन बैठे थे। उसी शाप के कारण सोनकर तालाबों में मिट्टी खोदने का काम करते थे, पर अब क्रोध नहीं पुण्य कमाते थे। ये ईंट बनाने के काम में भी बहुत कुशल रहे हैं। खंती भी तालाब में मिट्टी काटने के काम में बुलाए जाते थे। जहां ये किसी वजह से न हों, वहां कुम्हार से तालाब की मिट्टी के बारे में सलाह ली जाती थी।

तालाब की जगह का चुनाव करते समय बुलई बिना बुलाए जाते थे। बुलई यानी जिन्हें गांव की पूरी- पूरी जानकारी रहती थी। कहां कैसी जमीन है किसकी है, पहले कहां-कहां तालाब, बावड़ी आदि बन चुके हैं, कहां और बन सकते हैं- ऐसी सब जानकारियां बुलई को कंठस्थ रहती थी, फिर भी उनके पास इस सबका बारीक हिसाब-किताब लिखा भी मिलता था।

मालवा के इलाकों में बुलई की मदद से ही यह सब जानकारी रकबे में बाकायदा दर्ज की जाती थी। और यह रकबा हरेक जमींदारी में सुरक्षित रहता था।

बुलई कहीं ढेर भी कहलाते थे। और इसी तरह मिर्धा थे, जो जमीन की नाप-जोख, हिसाब-किताब और जमीन के झगड़ों का निपटारा भी करते थे।

ईंट और चूने के गारे का काम चुनकर करते थे। बचे समय में नमक का भी व्यापार इन्हीं के हाथ होता था। आज के मध्य प्रदेश में सन् 1911 में चुनकरों की आबादी 25000 से ऊपर थी। उधर उड़ीसा में लुनिया, मुरहा और सांसिया थे। अंग्रेज के समय सांसियों को अपराधी जाति का बताकर पूरी तरह तोड़ दिया गया था।

नए लोग जैसे तालाबों को भूलते गए, वैसे ही उनको बनाने वालों को भी। भूले-बिसरे लोगों की सूची में दुसाध, नौनिया, गोंड, परधान, कोल, ढीमर, ढींवर, भेई भी आते हैं। एक समय था जब ये तालाब के अच्छे जानकर माने जाते थे। आज इनकी उस भूमिका को समझने के विवरण भी हम खो बैठे हैं।

कोरी या कोली जाति ने भी तालाबों का बड़ा काम किया था। सैकड़ों तालाब बनाने वाले कोरियों के बारे में आज ठीक ढंग से जानकारी देने वाली एक पंक्ति भी नहीं मिल पाती। लेकिन एक समय था जब बहुत से क्षेत्र कोली जाति के सदस्यों को अपने यहां बसाने के लिए कई तरह की सुविधाएं जुटाते थे। महाराष्ट्र, गुजरात के अनेक गांवों में उन्हें जो जमीन दी जाती थी, उसका लगान माफ कर दिया जाता था। ऐसी जमीन बारा या वारो कहलाती थी।

सचमुच लौह पुरुष थे अगरिया। यह जाति लोहे के काम के कारण जानी जाती थी। पर कहीं-कहीं अगरिया तालाब भी बनाते थे। तालाब खोदने के औजार- गेंती, फावड़ा, बेल, मेटाक, तसले या तगाड़ी बनाने वाले लोग उन औजारों को चलाने में भी किसी से पीछे नहीं थे। बेल से ही बेलदार शब्द बना है।

माली समाज और इस काम में लगी परिहार जाति का भी तालाब बनाने में, तालाब बनने पर उसमें कमल, कुमुदिनी लगाने में योगदान रहता था। कहीं- कहीं तालाब के किनारे की कुछ जमीन केवल माली परिवारों के लिए सुरक्षित रखी जाती थी। उनका जीवन तालाब से चलता था और जीवनभर वे तालाब की रखवाली करते थे।

भील, भिलाले, सहरिया, कोल आज अपना सब कुछ खोकर जनजाति की अनुसूचित सूची में शामिल कर दिए गए हैं पर एक समय में इनके छोटे-बड़े राज थे। इन राज्यों में ये पानी की, तालाबों की पूरी व्यवस्था खुद संभालते थे। बहती नदी का पानी कहां रोक कर कैसा बंधान बांधना है और फिर उस बंधान का पानी कितनी दूर तक सींचने ले जाना है- यह कौशल भील, तीर- धनुष की तरह अपने कंधे पर ही रखते थे। इस तरह बांधे गए बंधानों और तालाबों के पानी के दबाव की भी उन्हें खूब परख रहती। दबाव कितना है और कितनी दूरी के कुओं को वह हरा कर देगा, यह भेद वे अपने

तीर से रेखा खींच कर बता सकते थे।

राजस्थान में यह काम मीणा करते थे। अलवर जिले में एक छोटी- सी नई संस्था तरुण भारत संघ ने पिछले 10 वर्षों में 2000 से अधिक तालाब बनाए हैं। उसे हर गांव में यही लगा कि पूरा गांव तालाब बनाना जानता है। कठिन से कठिन मामलों में संस्था को बाहर से कोई सलाह नहीं लेनी पड़ी, क्योंकि भीतर तो मीणा थे जो पीढ़ियों से यहां तालाब बनाते रहे हैं।

भीलों में कई भेद थे। नायक, नायका, चोलीवाला नायक, कापड़िया नायक, बड़ा नायक, छोटा नायक और फिर तलाबिया, गरासिया- सब तालाब और पानी के काम के नायक माने जाते थे।

नायक या महाराष्ट्र कोंकण में नाईक उपाधि, बंजारा समाज में भी थी। वन में बिचरने वाले बनचर, बिनचर धीरे-धीरे बंजारे कहलाने लगे। ये आज दयनीय बना दिए गए है, पर एक समय ये शहर से दूसरे शहर सैकड़ों पशुओं पर माल लाद कर व्यापार करने निकलते थे। गन्ने के क्षेत्र से धान के क्षेत्र में गुड़ ले जाते और फिर धान लाकर दूसरे क्षेत्रों में बेचते थे।

शाहजहां के वजीर आसफजहां जब सन् 1630 में दक्खन आए थे तो उनकी फौज का सामान भंगी-जंगी नाम के नायक बंजारों के बैलों पर लदा था। बैलों की संख्या थी एक लाख अस्सी हजार। भंगी-जंगी के बिना शाही फौज हिल नहीं सकती थी। उनकी प्रशंसा में वजीर आसफजहां ने उन्हें सोने से लिखा एक ताम्रपत्र भेंट किया था।

वर्णनों में कुछ अतिशयोक्ति होगी पर इनके कारवां में पशु इतने होते कि गिनना कठिन हो जाता था। तब इसे एक लाख पशुओं का कारवां मान लिया जाता था और ऐसी टोली का नायक लाखा बंजारा कहलाता था। हजारों पशुओं के इस कारवां को सैकड़ों लोग लेकर चलते थे। इसके एक दिन के पड़ाव पर पानी की कितनी मांग होती, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। जहां ये जाते, वहां अगर पहले से बना तालाब नहीं होता तो फिर वहां तालाब बनाना ये अपना कर्तव्य मानते थे। मध्य प्रदेश के सागर नाम की जगह में बना सुंदर और बड़ा तालाब ऐसे ही किसी लाखा बंजारे ने बनाया था। छत्तीसगढ़ में आज भी कई गांवों में लोग अपने तालाब को किसी लाखा बंजारे से जोड़कर याद करते हैं। इन अज्ञात लाखा बंजारों के हाथों से बने ज्ञात तालाबों की सूची में कई प्रदेशों के नाम समा जाएंगे।

गोंड समाज का तालाबों से गहरा संबंध रहा है। महाकौशल में गोंड का यह गुण जगह- जगह तालाबों के रूप में बिखरा मिलेगा। जबलपुर के पास कूड़न द्वारा बनाया गया ताल आज कोई एक हजार बरस बाद भी काम दे रहा है। इसी समाज में रानी दुर्गावती हुईं, जिन्होंने अपने छोटे से काल में एक बड़े भाग को तालाबों से भर दिया था।

गोंड न सिर्फ खुद तालाब बनाते-बनवाते थे, बल्कि तालाब बनाने वाले दूसरे लोगों का भी खूब सम्मान करते थे। गोंड राजाओं ने उत्तर भारत से कोहली समाज के लोगों को आज के महाराष्ट्र के भंडारा जिले में उत्साह के साथ लाकर बसाया था। भंडारा में भी इसी कारण बहुत अच्छे तालाब मिलते हैं।

बड़े तालाबों की गिनती में सबसे पहले आने वाला प्रसिद्ध भोपाल ताल बनवाया तो राजा भोज ने था पर इसकी योजना भी कालिया नामक एक गोंड सरदार की मदद से ही पूरी हो सकी थी। भोपाल-होशंगाबाद के बीच की घाटी में बहने वाली कालिया सोत नदी इन्हीं गोंड सरदार के नाम से याद की जाती है।

ओढ़िया, ओढ़ही, होरही, ओड़, औंड़- जैसे-जैसे जगह बदली, वैसे-वैसे इनका नाम बदलता था पर काम एक ही था, दिन-रात तालाब और कुएं बनाना। इतने कि गिनना संभव न बचे। ऐसे लोगों के लिए ही कहावत बनी थी कि ओड़ हर रोज नए कुएं से पानी पीते हैं। बनाने वाले और बनने वाली चीज के एकाकार होने का सबसे अच्छा उदाहरण शायद ही मिले क्योंकि कुएं का एक नाम ओड़ भी है। ये पश्चिम में ठेठ गुजरात से राजस्थान, उत्तर प्रदेश, विशेषकर बुलंदशहर और उसके आसपास के क्षेत्र, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उड़ीसा तक फैले थे। इनकी संख्या भी काफी रही होगी। उड़ीसा में कभी कोई संकट आने पर नौ लाख ओढ़िया के धार नगरी में पहुंचने की कहानी मिलती है। ये गधे पालते थे। कहीं ये गधों से मिट्टी ढो कर केवल पाल बनाते थे, तो कहीं तालाब की मिट्टी काटते थे। प्रायः स्त्री-पुरुष एक साथ काम करते थे। ओढ़ी मिट्टी के अच्छे जानकार होते थे। मिट्टी के रंग और मिट्टी की गंध से स्वभाव पढ़ लेते थे। मिट्टी की सतह और दबाव भी खूब पहचानते थे। राजस्थान में तो आज भी कहावत है कि ओढ़ी कभी दब कर नहीं मरते।

प्रसिद्ध लोकनायिका जसमा ओढ़न धार नगरी के ऐसे ही एक तालाब पर काम कर रही थी, जब उसे राजा भोज ने देख अपना राज-पाट तक छोड़ने का फैसला ले लिया था। राजा ने जसमा को सोने से बनी एक अप्सरा की तरह देखा था। पर ओढ़ी परिवार में जन्मी जसमा अपने को, अपने शरीर को तो क्या संसार तक को मिट्टी मानने वाली परंपरा का हिस्सा थी। किस्सा बताता है कि राजा जसमा को पाने के लिए कुछ भी करने को तैयार था, अपने कर्तव्य को छोड़ कर जो नहीं करने लायक था, वह भी करने लगा था। जसमा ऐसे राजा की रानी बनने से पहले मृत्यु का वरण करना तय करती है। राजा का नाम मिट गया पर जसमा ओढ़न का जस आज भी उड़ीसा से लेकर छत्तीसगढ़, महाकौशल, मालवा, राजस्थान और गुजरात में फैला हुआ है। सैकड़ों बरस बीत गए हैं, इन हिस्सों में फसल कटने के बाद आज भी रात-रात भर जसमा ओढ़न के गीत गाए जाते हैं, नौटंकी खेली जाती है। भवई के मंचों से लेकर भारत भवन, राष्ट्रीय नाटक विद्यालय तक में जसमा के चरण पड़े हैं।

जसमा ओढ़न का यश तो लोगों के मन में बाकी रहा पर ओढ़ियों का तालाब और कुएं वाला यश नए लोगों ने भुला दिया है। जो सचमुच राष्ट्र निर्माता थे, उन्हें अनिश्चित रोजी-रोटी की तलाश में भटकने के लिए मजबूर कर दिया गया है। कई ओढ़ी आज भी वही काम करते हैं- इंदिरा नहर को बनाने में हजारों ओढ़ी लगे थे - पर जस चला गया है उनका।

उड़ीसा में ओढ़ियों के अलावा सोनपुर, और महापात्रे भी तालाब और कुएं के निर्माता रहे हैं। ये गंजाम, पुरी, कोणार्क और आसपास के क्षेत्रों में फैले थे। सोनपुरा बालंगीर जिले के सोनपुर गांव से निकले

लोग थे। एक तरफ ये मध्य प्रदेश जाते थे तो दूसरी तरफ नीचे आंध्र तक। खरिया जाति रामगढ़, बिलासपुर और सरगुजा के आसपास तालाब, छोटे बांध और नहरों का काम करती थी। 1971 की जनगणना में इनकी संख्या 23 हजार थी।

बिहार में मुसहर, बिहार से जुड़े उत्तर प्रदेश के हिस्सों में लुनिया, मध्य प्रदेश में नौनिया, दुसाध और कोल जाति भी तालाब बनाने में मग्न रहती थी। मुसहर, लुनिया और नौनिया तब आज जैसे लाचार नहीं थे। 18वीं सदी तक मुसहरों को तालाब पूरा होने पर उचित पारिश्रमिक के साथ- साथ जमीन भी दी जाती थी। नौनिया, लुनिया की तालाब बनने पर पूजा होती थी। मिट्टी के पारखी मुसहर का समाज में अपना स्थान था। चोहरमल उनके एक शक्तिशाली नेता थे किसी समय। श्री सलेस (शैलेष) दुसाध के पूज्य थे। इनके गीत जगह-जगह गाए जाते हैं और इन्हें दूसरे लोग भी इज्जत देते हैं। दुसाध जब श्री सलेस के यज्ञ करते हैं तो अन्य जातियों के लोग भी उसमें भाग लेते हैं।

इन्हीं इलाकों में बसी थी डांढ़ी नामक एक जाति। यह कठिन और मेहनती काम करने के लिए प्रसिद्ध थी और इस सूची में तालाब और कुंआ तो शामिल था ही। बिहार में आज भी किसी कठिन काम का ठीक हल न सूझे तो कह देते हैं, डांढ़ी लगा दो। डांढ़ी बहुत ही सुन्दर मजबूत काठी की जाति थी। इस जाति के सुडौल, गठीले शरीर मछली (मांसपेशी) गिनने का न्यौता देते थे।

आज के बिहार और बंगाल में बसे संथाल सुंदर तालाब बनाते थे। संथाल परगने में बहुत कुछ मिट जाने के बाद भी कई आहर यानी तालाब, संथालों की कुशलता की याद दिलाने खड़े हैं।

महाराष्ट्र के नासिक क्षेत्र में कोहलियों के हाथों इतने बंधान और तालाब बने थे कि इस हिस्से पर अकाल की छाया नहीं पड़ती थी। समुद्र तटवर्ती गोवा और कोंकण प्रदेश घनघोर वर्षा के क्षेत्र हैं। पर यहां वर्षा का मीठा पानी देखते ही देखते खारे पानी के विशाल समुद्र में मिल जाता है। यह गावड़ी जाति की ही कुशलता थी कि पश्चिमी घाट की पहाड़ियों पर ऊपर से नीचे तक कई तालाबों में वर्षा का पानी वर्ष भर रोककर रखा जाता था। यहां और इससे ही जुड़े कर्नाटक के उत्तरी कन्नड़ क्षेत्र में चीरे नामक पत्थर मिलता है। तेज बरसात और बहाव को इसी पत्थर के सहारे बांधा जाता है। चीरे पत्थर को खानों से निकाल कर एक मानक आकार में तराशा जाता रहा है। इस आकार में रत्ती भर परिवर्तन नहीं आया है।

इतना व्यवस्थित काम बिना किसी व्यवस्थित ढांचे के नहीं हो सकता था। बुद्धि और संगठन का एक ठीक तालमेल खड़े किए बिना देश में इतने सारे तालाब न तो बन सकते थे, न टिक ही सकते थे। यह संगठन कितना चुस्त, दुरुस्त रहा होगा, इस प्रश्न का उत्तर दक्षिण की एक झलक से मिलता है।

दक्षिण में सिंचाई के लिए बनने वाले तालाब एरी कहलाते हैं। गांव- गांव में एरी थीं और उपेक्षा के 200 बरसों के इस दौर के बावजूद इनमें से हजारों एरियां आज भी सेवा कर रही हैं। गांव में पंचायत के भीतर ही एक और संस्था होती थी : एरी वार्यम। एरी वार्यम में गांव के छह सदस्यों की एक वर्ष के लिए नियुक्ति होती थी। एरी से संबंधित हरेक काम - एरी बनाना, उसका रख- रखाव, सिंचाई की उचित और निष्पक्ष व्यवस्था और इन सब कामों के लिए सतत साधन जुटाना वार्यम् के जिम्मे होता था वार्यम् के छह सदस्य इन कामों को ठीक से नहीं कर पाएं तो उन्हें नियुक्ति की अवधि से पहले भी हटाया जा सकता था।

यहां एरी बनाने का काम वोद्दार करते थे। सिंचाई की पूरी व्यवस्था के लिए एक पद होता था। इसे अलग- अलग क्षेत्र में नीरघंटी, नीरगंटी, नीरआनी, कंबककट्टी और माइयन थोट्टी के नाम से जाना जाता था। तालाब में कितना पानी है, कितने खेतों में सिंचाई होनी है, पानी का कैसा बंटवारा करना है- ये सारे काम नीरघंटी करते थे। नीरघंटी का पद अनेक क्षेत्रों में सिर्फ हरिजन को ही दिया जाता था और सिंचाई के मामले में उनका निर्णय सर्वोपरि रहता था। किसान कितना भी बड़ा क्यों न हो, इस मामले में नीरघंटी से छोटा ही माना जाता था।

एक तरफ दक्षिण में नीरघंटी जैसे हरिजन थे तो पश्चिम में पालीवाल जैसे ब्राह्मण भी थे। जैसलमेर, जोधपुर के पास दसवीं सदी में पल्ली नगर में बसने के कारण ये पल्लीवाल या पालीवाल कहलाए। इन ब्राह्मणों को मरुभूमि में बरसने वाले थोड़े- से पानी को पूरी तरह से रोक लेने का अच्छा कौशल सध गया था। वे खडीन के अच्छे निर्माता थे। मरुभूमि का कोई ऐसा बड़ा टुकड़ा जहां पानी बहकर आता हो, वहां दो या तीन तरफ से मेड़बंदी कर पानी रोक कर विशिष्ट ढंग से तैयार बांधनुमा खेत को खडीन कहा जाता है। खडीन खेत बाद में है, पहले तो तालाब ही है। मरुभूमि में सैकड़ों मन अनाज इन्हीं खडीनों में पैदा किया जाता रहा है। आज भी जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर क्षेत्र में सैकड़ों खडीन खड़ी हैं।

लेकिन पानी के काम के अलावा स्वाभिमान भी क्या होता है, इसे पालीवाल ही जानते थे। जैसलमेर में न जाने कितने गांव पालीवालों के थे। राजा से किसी समय विवाद हुआ। बस, रातों-रात पालीवालों के गांव खाली हो गए। एक से एक कीमती, सुन्दर घर, कुएं खडीन सब छोड़कर पालीवाल राज्य से बाहर हो गए। आज उनके वीरान गांव और घर जैसलमेर में पर्यटक को गाइड बड़े गर्व के साथ दिखाते हैं। पालीवाल वहां से निकलकर कहां-कहां गए इसका ठीक अंदाज नहीं है पर एक मुख्य धारा आगरा और जौनपुर में जा बसी थी।

महाराष्ट्र में चितपावन ब्राह्मण भी तालाब बनाने से जुड़े थे। कुछ दूसरे ब्राह्मणों को यह ठीक नहीं लगा कि ब्राह्मण मिट्टी खोदने और ढोने के काम में लगें। कथा है वासुदेव चित्तले नामक चितपावन ब्राह्मण की। वासुदेव ने कई तालाब, बावड़ी और कुएं बनाए थे। जब वे परशुराम क्षेत्र में एक बड़ा सरोवर बना रहे थे और उनके कारण अनेक ब्राह्मण मिट्टी खोद रहे थे तो देवरुख नामक स्थान से आए ब्राह्मणों के एक समूह ने उनका विरोध किया। तब वासुदेव ने उन्हें शाप दिया कि जो भी ब्राह्मण तुम्हारा साथ देंगे वे तेजहीन होकर लोगों की निंदा के पात्र बनेंगे। उस चितपावन के शाप से बाद में ये लोग

शेष पृष्ठ 14 पर

पैगम्बर रो पैगाम

■ आयुष रांका

मैं चाहता हूँ कि ज्यादा से ज्यादा लोग पैगम्बर मुहम्मद की कहानी जानें।

मारवाड़ी में पैगम्बर की पहली जीवनी के लेखक राजीव शर्मा।

राजीव शर्मा एक मारवाड़ी और हिंदी लेखक हैं। पैगम्बर मुहम्मद की कहानी बयान करती उनकी किताब हाल में ही प्रकाशित हुई है। उन्होंने इससे पहले भी कई किताबें लिखी हैं पर इस किताब के विषय ने राजस्थान में, जहाँ मारवाड़ी भाषा व्यापक रूप से बोली जाती है, काफी कौतूहल पैदा किया है। 'द वायर' ने इस युवा लेखक से संपर्क साधा और उनके और उनकी किताब के बारे में कुछ सवाल उनके सामने रखे।

हमें ये बताइये कि पैगम्बर मुहम्मद के जीवन पर किताब लिखने के पीछे आपके कारण क्या थे। आपकी रूचि इस विषय में कैसे हुई?

पंद्रह साल पहले, जब में नवें दर्जे में था तो मैंने अपने गाँव में एक लाइब्रेरी की शुरुआत की। हालाँकि किताबें पढ़ना, स्कूलों में एक भारी-भरकम काम के रूप में प्रस्तुत किया जाता है पर मेरी रूचि हमेशा से ही पढ़ने में रही है। इस रूचि की वजह से मुझे कॉमिक्सों से लेकर मिथकीय किताबों तक तरह-तरह की किताबें पढ़ने का मौका मिला। उसी दौर में, पैगम्बर मुहम्मद के जीवन की कहानी बताती एक पॉकेट बुक मेरे हाथ लगी। यह किताब पढ़ते हुए मुझे एहसास हुआ कि कैसे उन्होंने अपना सारा जीवन नकारात्मकता से संघर्ष करने में लगा दिया और जीवन की तमाम दुखद घटनाओं के बाद भी ईश्वर में उनकी आस्था पत्थर की तरह दृढ़ रही।

इस किताब के मिलने के अलावा, दो और ऐसी घटनाएँ थीं जिन्होंने पैगम्बर मुहम्मद पर मेरी जिज्ञासा को और भी बढ़ाया। एक ब्राह्मण परिवार से होने के बाद भी मैंने हमेशा तथाकथित बाबाओं के झांसेदार अनुष्ठानों और तौर-तरीकों, जो सिर्फ उन्हें ही फायदा पहुंचाते हैं, के विरुद्ध आवाज़ उठाने की कोशिश की है। मेरे गाँव में एक बाबा था जो साहूकार का भी काम करता था। वो गाँव वालों को आसमान छूती ब्याज़ दर पर रुपये उधार देता था। कभी-कभी तो मूल हज़ार के आसपास होता और ब्याज़ लाखों तक पहुँच जाता। गाँव वालों के जीवन को इस तरह बाबा के हाथों बर्बाद होता देखकर मुझे यह याद आता कि कैसे पैगम्बर मुहम्मद एक ऐसे शख्स थे जिन्होंने स्पष्टतः ब्याज लेने को गुनाह करार दिया था। उनका कहना था कि यह प्रवृत्ति विनाशकारी ताकतों की सूचक है।

दूसरी घटना यह कि मैंने अपने परिवार में जन्मी एक लड़की की कथा सुनी जिसका विवाह तब कर दिया गया था जब वह केवल पांच साल की थी। परिवार ने उसका विवाह इतनी कम उम्र में इसलिए तय कर दिया क्योंकि पंडितों की नज़र में बारह साल की उम्र से पहले लड़की की शादी कर देना धर्म विवाह था! पर जैसाकि किस्मत को मंजूर था विवाह के समय ही उसके वर की मृत्यु हो गयी। पंडित ने तब तय किया कि वह लड़की अपना जीवन इस पुरुष की विधवा के रूप में बितायेगी। यह घटना मुझे हमेशा उदास करती। इस उदासी में मुझे फिर मुहम्मद साहब के जीवन से जुड़ाव महसूस हुआ जिन्होंने एक विधवा से शादी की थी।

क्या आपको लगता है कि भारत में हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे की संस्कृति और आस्थाओं के बारे में बहुत कुछ पढ़ते नही हैं?

हाँ, ये सही है। कुछ लोग एक दूसरे की धार्मिक पुस्तकों को छूना भी नहीं चाहते तो कुछ को एक दूसरे को जानने-समझने में कोई रूचि नहीं है।

किसी और धर्म या पैग़म्बर का अध्ययन करना, उनके बारे में जानना, उनकी सुंदर बातों का अनुसरण करना, इसका मतलब यह नहीं कि आप अपना धर्म बदलने जा रहे हैं। मेरी मुहम्मद साहब में गहरी आस्था है और मुझे यह भी स्वीकार है कि वे ईश्वर के नबी थे। पर उनकी शिक्षाओं का पालन करने का पूरा प्रयास करते हुए भी मैं आज भी उतना ही हिन्दू हूँ जितना अपने जीवन के पहले रोज़ था। युवाओं को दूसरे धर्मों, उनकी शिक्षाओं और आस्थाओं के बारे में और अध्ययन करना चाहिए। मेरे छोटे भाई ने एक वित्त पर आधारित पत्रिका में इस्लामिक बैंकिंग के बारे में कुछ पढ़ा था और मुझे प्रेरित किया था की मैं पैगम्बर मुहम्मद के जीवन पर एक किताब लिखूं।

आपने पैगम्बर मुहम्मद के बारे में जानकारियां कैसे जुटाईं? इन जानकारियों के स्रोत क्या-क्या हैं?

मैंने उनके जीवन पर शोध करने के लिए ढेरों किताबें पढ़ीं। इनमें से कुछ किताबें अफ़ग़ानिस्तान, सऊदी अरब और मिस्र के

लेखकों की थीं तो कुछ भारत की भी। सूचनाएँ जुटाने के लिए इंटरनेट भी एक अच्छा ज़रिया होता है।

क्या इस्लाम के इतिहास और पैगम्बर के जीवन में आपकी हमेशा रूचि रही है या कोई ऐसी घटना थी जिसने आपको इस विषय पर पढ़ने के लिए प्रेरित किया?

नहीं, इस्लाम के इतिहास और पैगम्बर मुहम्मद के जीवन में मेरी रूचि हमेशा से नहीं रही। बहुतों की तरह मेरा ज्ञान भी न्यूनतम था और कुछ सतही बातों तक ही सीमित था। साथ ही मेरे गाँव में एक भी मुसलमान घर नहीं था इसलिए इस धर्म और उसके रीति-रिवाज़ों से मेरा परिचय ना के बराबर था। जब मैंने अपनी लाइब्रेरी शुरू की और पैगम्बर मुहम्मद पर एक किताब पढ़ी तो मैंने तय किया की मैं और पढ़ूंगा। पढ़ने के बाद मैंने अपने विचारों को उनके दर्शन की तरफ सहज ही झुकता हुआ पाया। मुझे तब लगा कि उनकी कहानी सबको सुननी चाहिए।

देश में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच होने वाली हिंसक घटनाओं के बारे में आपका क्या सोचना है?

हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच हिंसा का कारण केवल एक दूसरे के प्रति भ्रांतियों का होना और अपनी मान्यताओं को लेकर श्रेष्ठता बोध से ग्रस्त होना है। हम सभी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते हैं पर ऐसा शायद ही होता है कि हम उनके संदेशों को अपने जीवन में उतारें। इस तरह पढ़ना इम्तहान के लिए पढ़ने जैसा है-यानि के अंकों के लिए ना कि ज्ञान के लिए। अगर आप कुरान पढ़ें तो आपको शांति और दया-प्रेम के सन्देश मिलेंगे। हिन्दू धर्म की शिक्षा यह है कि हम सारे संसार को अपना परिवार समझें और ईसा मसीह ने तो उनके लिए भी क्षमा की प्रार्थना की थी जो उन्हें सूली पर चढ़ा रहे थे। आज के समय में ऐसे धार्मिक वचनों का लोगों को खूब प्रचार करना चाहिए और उन्हें व्यवहार का हिस्सा बनाना चाहिए।

क्या आपको अपनी किताब के विषय के चलते किन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ा? किताब लिखते समय आपको किन आपत्तियों से दो-चार होना पड़ा?

जब मैंने इस किताब को पूरा किया और इसे अपने ब्लॉग पर डालने का निर्णय लिया तब मुझे ना कोई डर था ना कोई शंका क्यूंकि मुझे पता था कि मैं सच बयान कर रहा हूँ। सच कहने में किसी तरह का भय नहीं होना चाहिए। मेरे परिवार ने मेरे इस प्रयास को पूरा समर्थन दिया था और लोगों ने भी अपेक्षा से बढ़कर इस किताब को प्यार दिया।

जहाँ मुझे सारी दुनिया से किताब की प्रशंसा करते मेल प्राप्त हुए वहीं उनमें से कुछ नफ़रत भरे हुए भी थे। इनमें मुझे लोग गोली मार देने की या फांसी पर लटका देने की धमकियां दे रहे थे और कुछ में तो मुझे इस्लामिक स्टेट का हिस्सा बन जाने की सलाह तक दे डाली गयी थी! इन संदेशों ने मुझे बहुत दुःख पहुँचाया। क्या ये पैगम्बर पर लिखने का इनाम मुझे मिल रहा था? उल्लेखनीय रूप से मुझे ऐसे सन्देश मुसलमानों की तरफ से नहीं मिले। पर मेरा ये भी मानना है कि जिन्होंने ऐसे सन्देश मुझे भेजे वे सिर्फ और सिर्फ अमन के विरोधी ही हो सकते हैं। ऐसे लोग किसी धर्म से ताल्लुक नहीं रखते क्योंकि कोई भी धर्म हिंसा नहीं सिखलाता।

आपकी किताब अभी इंटरनेट पर मुफ्त उपलब्ध है। क्या किताब को प्रकाशित करने की योजनाएं बन रही हैं? अभी तक लोगों की इस सन्दर्भ में क्या प्रतिक्रियाएं रही हैं?

ई प्रारूप पर तो प्रतिक्रियाएं ज़बरदस्त रही हैं पर मुझे लगता है कि ये किताब प्रिंट में भी उपलब्ध होनी चाहिए। मैंने अभी तक किसी प्रकाशक से संपर्क नहीं किया है पर अगर कोई अच्छा प्रकाशक रूचि दिखाता है तो मैं इसे छपवाने के लिए तैयार हूँ।

क्या आपने पहले भी मारवाड़ी में किताबें लिखी हैं या अन्य कृतियों का मारवाड़ी में अनुवाद किया है? इन किताबों के विषय क्या-क्या रहे हैं?

हाँ मारवाड़ी तो मेरी मातृभाषा है। मारवाड़ी में मेरा पहला काम हनुमान चालीसा का अनुवाद था। मैंने तोल्स्तोय की कहानियों, अब्राहम लिंकन के पत्रों और जैन धर्म की शिक्षाओं, आदि का मारवाड़ी में अनुवाद किया है। मैंने कई किताबें हिंदी में भी लिखी हैं, जो सब की सब मेरी वेबसाइट पर आपको मिल जायेंगी।

मारवाड़ी में प्रकाशन परिदृश्य कैसा है?

स्थिति बहुत ही ख़राब है। पूरे राजस्थान में ऐसी किताब की दुकानें ढूंढना मुश्किल है जहाँ मारवाड़ी किताबें भी मिलती हों। सामान्यतः मारवाड़ी किताबें उपलब्ध नहीं हैं और युवाओं को लगता है कि ये किताबें पिछली पीढ़ियों के लिए ही होती हैं। अगर किताबें सहज रूप से उपलब्ध होने लगें तो ये सब बदल सकता है।

किताब शुरू करने से लेकर इसे ऑनलाइन प्रकाशित करने तक ऐसी बिरली किताब लिखने का सबसे मुश्किल पक्ष क्या रहा?

आश्चर्यजनक रूप से किताब को लिखने में और इसे प्रकाशित करने में कोई कठिनाई पेश नहीं आई। समस्याएं तब शुरू हुईं जब ये किताब ऑनलाइन उपलब्ध हो गयी। जहाँ कुछ रिश्तेदारों को ये लगा कि मैंने इस्लाम कुबूल लिया है वहीं कुछ ने सलाह दी कि मैं दूसरे धर्मों से जुड़े मसलों पर अपना समय ज़ाया ना करूँ। बहुत सारे लोग मेरी पीठ पीछे तरह-तरह की बातें बनाते हैं पर मैंने अब ऐसी बातों पर हंसना सीख लिया है।

क्या नयी किताब लिखने की कोई योजना है? क्या इस किताब का विषय भी इस्लाम से सम्बंधित होगा?

हाँ, मैं और किताबें लिखना चाहता हूँ। मेरा बहुत मन है की मैं कुरान की शिक्षाओं पर एक ऐसी किताब लिखूं जो सबके लिए उपयोगी हो। मेरी योजना मुहम्मद साहब के निकट सहयोगियों और उनके अज़ीज़ों पर एक किताब लिखने की है। मैं चाहता हूँ कि ये किताबें मारवाड़ी के अलावा हिंदी, और अंग्रेजी में भी उपलब्ध हों।

अनुवाद - सौम्य मालवीय

प्रेमचंद के जन्मदिवस (31 जुलाई) पर उनकी यह कहानी समरथ के पाठकों के लिए।

रामलीला

■ मुंशी प्रेमचंद

इधर एक मुद्दत से रामलीला देखने नहीं गया। बंदरों के भद्दे चेहरे लगाए, आधी टाँगों का पाजामा और काले रंग का कुर्ता पहने, आदमियों को दौड़ते, हू-हू करते देखकर अब हँसी आती है, मजा नहीं आता। काशी की लीला जगद विख्यात है। सुना है, लोग दूर-दूर से देखने आते हैं। मैं भी बड़े शौक से गया, पर मुझे तो वहाँ की लीला, और किसी वज्र देहात की लीला में कोई अंतर दिखाई नहीं दिया। हाँ, रामगनर की लीला में कुछ साज-समान अच्छे हैं। राक्षसों और बंदरों के चेहरे पीतल के, गदाएँ भी पीतल की, कदाचित बनवासी भ्राताओं के मुकुट सच्चे काम के हों, लेकिन साज-समान के सिवा वहाँ भी वही हू-हू के सिवा और कुछ नहीं। फिर भी लाखों आदमियों की भीड़ लगी रहती है।

लेकिन एक जमाना वह था, जब मुझे भी रामलीला में उन्माद से कम आनंद न था। संयोगवश उन दिनों मेरे घर से बहुत थोड़ी दूरी पर रामलीला का मैदान था और जिस घर में लीला पात्रों का रूप-रंग भरा जाता था, वह मेरे घर से बिल्कुल मिला हुआ था। दो बजे दिन से पात्रों की सजावट होने लगती थी। मैं दोपहर से वहाँ जा बैठता और जिस उत्साह से दौड़-दौड़कर छोटे-मोटे काम करता, उस उत्साह से तो आज अपनी पेंशन भी लेने नहीं जाता। एक कोठरी में राजकुमारों का श्रृंगार होता था। उनकी देह में रामरज पीसकर पोती जाती, मुँह पर पाउडर लगाया जाता और पाउडर के ऊपर लाल, हरे, नीले रंग की बुंदकियाँ लगाई जाती थीं। सारा माथा, भौंहें, गाल ठोड़ी बुंदकियों से रच उठती थीं। एक ही आदमी इस काम में कुशल था। वही बारी-बारी से तीनों पात्रों का श्रृंगार करता था। रंग की प्यालियों में पानी लाना, रामरज पीसना, पंखा झलना मेरा काम था। जब तैयारियों के बाद विमान निकलता तो उस पर रामचंद्रजी के पीछे बैठकर मुझे जो उल्लास, जो गर्व, जो रोमांच होता था, वह अब लाट साहब के दरबार में कुरसी पर बैठकर नहीं होता। एक बार जब मेंबर साहब ने व्यवस्थापक सभा में मेरे प्रस्ताव का अनुमोदन किया था, उस वक्त मुझे कुछ उसी तरह का उल्लास, गर्व और रोमांच हुआ था। हाँ, एक बार जब मेरे ज्येष्ठ पुत्र नायब तहसीलदारी में नामजद हुआ, तब भी कुछ ऐसी तरंगें मन में उठी थीं, पर इनमें और बाल-विह्लता में बड़ा अंतर है। तब ऐसा मालूम होता था कि मैं स्वर्ग में बैठा हूँ।

निषाद नौका-लीला का दिन था। मैं दो-चार लड़कों के बहकावे में आकर गुल्ली-डंडा खेलने लगा। आज श्रृंगार देखने न गया। विमान भी निकला पर मैंने खेलना न छोड़ा। मुझे अपना दाँव लेना था। अपना दाँव छोड़ने के लिए उससे कहीं बढ़कर आत्महत्या की जरूरत थी, जितना मैं कर सकता था। अगर दाँव देना होता, तो मैं कब का भाग खड़ा होता, लेकिन पदाने में कुछ और ही बात होती है।

खैर, दाँव पूरा हुआ। अगर चाहता, तो धाँधली करके दस-पाँच मिनट और पदा सकता था इसकी काफी गुंजाइश थी, लेकिन अब इसका मौका न था। मैं सीधे नाले की तरफ दौड़ा। विमान जल-तट पर पहुँच चुका था। मैंने दूर से देखा, मल्लाह किश्ती लिए आ रहे हैं। दौड़ा, लेकिन आदमियों की भीड़ में दौड़ना कठिन था। आखिर जब मैं भीड़ हटाता, प्राणपण से आगे बढ़ता घाट तक पहुँचा तो निषाद अपनी नौका खोल चुका था। रामचंद्र पर मेरी कितनी श्रद्धा थी। मैं अपने पाठ की चिंता न करके उन्हें पढ़ा दिया करता था, जिससे वह फेल न हो जाएँ। मुझसे उम्र में ज्यादा होने पर भी वह नीची कक्षा में पढ़ते थे। लेकिन वही रामचंद्र नौका पर बैठे इस तरह मुँह फेरे चले जाते थे, मानो मुझसे जान-पहचान ही नहीं। नकल में भी असल की कुछ-न-कुछ बू आ ही जाती है। भक्तों पर जिनकी निगाह सदा तीखी रही है, वह मुझे क्या उबारते? मैं विकल होकर उस बछड़े की भाँति कूदने लगा, जिसकी गरदन पर पहली बार जुआ रखा गया हो। कभी लपककर नाले की ओर जाता, कभी किसी सहायक की खोज में पीछे की तरफ दौड़ता, पर सबके सब अपनी धुन में मस्त थे, मेरी चीख-पुकार किसी के कानों तक न पहुँची। तब से बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ झेलीं, पर उस समय जितना दुख हुआ, उतना फिर कभी नहीं हुआ।

हमने निश्चय किया था कि अब रामचंद्र से कभी न बोलूँगा, न कभी खाने की कोई चीज ही दूँगा, लेकिन ज्यों ही नाले को पार करके वह पुल की ओर से लौटे, मैं दौड़कर विमान पर चढ़ गया, और ऐसा खुश हुआ मानो कोई बात ही न हुई थी।

2

रामलीला समाप्त हो गई थी। राजगद्दी होने वाली थी, पर न जाने क्या देर हो रही थी। शायद चंदा कम वसूल हुआ था।

रामचंद्र की इन दिनों कोई बात न पूछता था। न तो घर जाने की छुट्टी मिलती थी, न भोजन का ही प्रबंध होता था। चौधरी साहब के यहाँ से एक सीधा कोई तीन बजे दिन को मिलता था। बाकी सारे दिन कोई पानी को भी न पूछता, लेकिन मेरी श्रद्धा अभी तक ज्यों-की-त्यों थी। मेरी दृष्टि में वह अब भी रामचंद्र ही थे। घर पर मुझे खाने की जो चीज मिलती, वह लेकर रामचंद्र को दे आता। उन्हें खिलाने में मुझे जितना आनंद मिलता था, उतना खाने में कभी नहीं मिलता था। कोई मिठाई या फल पाते ही बेतहाशा चौपाल की ओर दौड़ता, अगर रामचंद्र वहाँ न मिलते, तो उन्हें चारों और तलाश करता और जब तक वह चीज उन्हें न खिला लेता, मुझे चौन न आता था।

खैर, राजगद्दी का दिन आया। रामलीला के मैदान में एक बड़ा-सा शामियाना ताना गया। उसकी सजावट की गई। वेश्याओं के दल भी आ पहुँचे। शाम को रामचंद्र की सवारी निकली और प्रत्येक द्वार पर उनकी आरती उतारी गई। श्रद्धानुसार किसी ने रुपए दिए, किसी ने पैसे। मेरे पिता पुलिस के आदमी थे इसलिए उन्होंने बिना कुछ दिए ही आरती उतारी। इस वक्त मुझे जितनी लज्जा आई, उसे बयान नहीं कर सकता। मेरे पास संयोग से एक रुपया था। मेरे मामाजी दशहरे के पहले आए थे और मुझे एक रुपया दे गए थे। उस रुपए को मैंने रख छोड़ा था। दशहरे के दिन भी उसे खर्च न कर सका। मैंने तुरंत वह रुपया लाकर आरती की थाली में डाल दिया। पिताजी मेरी ओर कुपित नेत्रों से देखकर रह गए। उन्होंने कुछ कहा तो नहीं, लेकिन मुँह ऐसा बना लिया, जिससे प्रकट होता था कि मेरी इस धृष्टता से उनके रौब में बट्टा लग गया। रात को दस बजते-बजते यह परिक्रमा पूरी हुई, आरती की थाली रुपयों और पैसों से भरी हुई थी। ठीक तो नहीं कह सका, मगर अब ऐसा अनुमान होता है कि चार-पाँच सौ रुपयों से कम न थे। चौधरी साहब इससे कुछ ज्यादा ही खर्च चुके थे। इन्हें इसकी बड़ी फिक्र हुई कि किसी तरह कम-से-कम दो सौ रुपए और वसूल हो जाएँ। इसकी सबसे अच्छी तरकीब उन्हें यही मालूम हुई कि वेश्याओं द्वारा महफिल का रंग जम जाए, तो आबादीजान रसिकजनों की कलाइयाँ पकड़-पकड़कर ऐसे हाव-भाव दिखावे कि लोग शरमाते-शरमाते भी कुछ दे ही मरें। आबादीजान और चौधरी साहब में सलाह होने लगी। मैं संयोग से उन दोनों प्राणियों की बातें सुन रहा था। चौधरी साहब ने समझा होगा, यह लौंडा क्या मतलब समझेगा, पर यहाँ ईश्वर की दया से अक्ल के पुतले थे सारी दास्तान समझ में आ जाती थीं।

चौधरी- सुनो आबादीजान, यह तुम्हारी ज्यादती है। हमारा और तुम्हारा कोई पहला साबका तो है नहीं। ईश्वर ने चाहा, तो यहाँ हमेशा तुम्हारा आना-जाना लगा रहेगा। अबकी चंदा बहुत कम आया, नहीं तो मैं तुमसे इसरार न करता।

आबादी- आप मुझसे जमींदारी चाल चलते हैं, क्यों? मगर यहाँ हुजूर की दाल न गलेगी। वाह! रुपए मैं वसूल करूँ और मूँछों पर ताव आप दें। कमाई का यह ढंग अच्छा निकाला है। इस कमाई से तो वाकई आप थोड़े दिनों में राजा हो जाएँगे। उसके सामने जमींदारी झक मारेगी। बस, कल ही से एक चकला खोल दीजिए। खुदा की कसम माला-माल हो जाइएगा।

चौधरी- तुम तो दिल्लगी करती हो, और यहाँ काफिया तंग हो रहा है।

आबादी- तो आप भी मुझी से उस्तादी करते हैं। यहाँ आप, जैसे कइयों को रोज ऊँगलियों पर नचाती हूँ।

चौधरी- आखिर मंशा क्या है?

आबादी- जो कुछ वसूल करूँ, उसमें से आधा मेरा और आधा आपका, लाइए हाथ मारिए।

चौधरी- यही सही।

आबादी- अच्छा, तो पहले मेरे सौ रुपए गिन दीजिए। पीछे से आप अलसंट करने लगेंगे।

चौधरी- वाह! वह भी लोगी और यह भी।

आबादी- अच्छा, तो क्या आप समझते थे कि अपनी उजरत छोड़ दूँगी। वाह री आपकी समझ! खूब, क्यों न हो? दीवाना बकारे दरवेश होशियार।

चौधरी- तो क्या तुमने दोहरी फीस लेने की ठानी है?

आबादी- अगर आपको सौ दफे गरज हो तो। वरना मेरे सौ रुपए तो कहीं गए नहीं। मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, जो लोगों की जेब में हाथ डालती फिरूँ।

चौधरी की एक न चली। आबादी के सामने दबना पड़ा। नाच शुरू हुआ। आबादीजान बला की शोख औरत थी। एक तो कमसिन, उस पर हसीना। और उसकी अदाएँ तो गजब की थीं कि मेरी तबीयत भी मस्त हुई जाती थी। आदमियों को पहचानने का गुण भी उसमें कुछ कम न था। जिसके सामने बैठ गई, उससे कुछ-न-कुछ ले ही लिया। पाँच रुपए से कम तो शायद किसी ने दिए हों। पिताजी के सामने भी वह जा बैठी। मैं तो मारे शर्म के गड़ गया। जब उसने उनकी कलाई पकड़ी, तब तो मैं सहम उठा। मुझे यकीन था कि पिताजी उसका हाथ झटक देंगे और शायद दुत्कार भी दें, किंतु यह क्या हो रहा है। ईश्वर! मेरी आँखें धोखा नहीं खा रही हैं। पिताजी मूँछों में हँस रहे हैं। ऐसी मृदु हँसी उनके चेहरे पर मैंने कभी नहीं देखी थी। उनकी आँखों से अनुराग टपक पड़ता था।

उनका एक-एक रोम पुलकित हो रहा था; मगर ईश्वर ने मेरी लाज रख ली। वह देखो, उन्होंने धीरे से आबादी के कोमल होथों से अपनी कलाई छुड़ा ली। अरे! यह फिर क्या हुआ। आबादी तो उनके गले में बाँहें डाल देती है। अबकी पिताजी जरूर पीटेंगे। चुड़ैल को जरा भी शर्म नहीं।

एक महाशय ने मुस्कराकर कहा, यहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी, आबादीजान। और दरवाजा देखो।

बात तो इन महाशय ने मेरे मन की कही और बहुत ही उचित कही, लेकिन न जाने पिताजी ने उनकी ओर कुपित नेत्रों से देखा और मूँछों पर ताव दिया। मुँह पर तो कुछ न बोले पर उनके मुख की आकृति चिल्लाकर सरोष शब्दों में कह रही थी- तू बनिया मुझे समझता क्या है? यहाँ ऐसे अवसर पर जान तक निसार करने को तैयार हूँ, रुपए की हकीकत ही क्या। तेरा जी चाहे, आजमा ले। तुझसे दूनी रकम दे डालूँ तो मुँह न दिखाऊँ। महान आश्चर्य, घोर अनर्थ! अरे, जमीन फट क्यों नहीं जाती। आकाश, तू फट क्यों नहीं पड़ता। अरे मौत क्यों नहीं आ जाती! पिता जी जेब में हाथ डाल रहे हैं। वह कोई चीज निकाली और सेठ को दिखाकर आबादीजान को दे डाली। आह! यह तो अशफी है। चारों और तालियाँ बजने लगीं। सेठ जी उल्लू बन गए या पिताजी ने मुँह खाई, इसका निश्चय मैं नहीं कर सका। मैंने केवल इतना देखा कि पिता जी ने एक अशफी निकालकर आबादीजान को दी। उनकी आँखों में इस समय इतना गर्वयुक्त उल्लास था, मानो उन्होंने हातिम की कब्र पर लात मारी हो। यही पिताजी तो हैं, जिन्होंने मुझे आरती में एक रुपया डालते देखकर मेरी ओर इस तरह देखा था, मानो मुझे फाड़ ही खाएँगे। मेरे उस समय इस घृणित, कुत्सित, निंदित व्यवहार पर वह गर्व और आनंद से फूले न समाते थे।

आबादीजान ने एक मनोहर मुस्कान से पिताजी को सलाम किया और आगे बढ़ी; मगर मुझसे वहाँ न बैठा गया। मारे शर्म के मेरा मस्तक झुका जाता था। अगर मेरी आँखों देखी बात न होती, तो मुझे इस पर कभी एतबार न होता। मैं बाहर जो कुछ देखता-सुनता था, उसकी रिपोर्ट अम्मा से जरूर करता था; पर इस मामले को मैंने उनसे छिपा रखा। मैं जानता था, उन्हें यह बात सुनकर बड़ा दुख होगा।

रात-भर गाना होता रहा। तबले की धमक मेरे कानों में आ रही थी। जी चाहता था, चलकर देखूँ, पर साहस न होता था। मैं किसी को मुँह कैसे दिखलाऊँगा? कहीं किसी ने पिताजी का जिक्र छोड़ दिया तो क्या करूँगा।

प्रातःकाल रामचंद्र जी की विदाई होने वाली है। मैं चारपाई से उठते ही आँखें मलता हुआ चौपाल की ओर भागा। डर रहा था कि कहीं रामचंद्र जी चले न गए हों। पहुँचा तो देखा तवायफों की सवारियाँ जाने को तैयार हैं। बीसों आदमी हसरत से नाक-मुँह बनाए उन्हें घेरे खड़े थे। मैंने उनकी ओर आँख न उठाई। सीधा रामचंद्र के पास पहुँचा। लक्ष्मण-सीता रो रहे थे और रामचंद्र खड़े काँधे पर लुटिया-डोर डाले उन्हें समझा रहे थे। मेरे सिवा वहाँ कोई न था। मैंने कुंठित स्वर में रामचंद्र से पूछा-क्या तुम्हारी विदाई हो गई?

रामचंद्र- हो तो गई। हमारी विदाई ही क्या? चौधरी साहब ने कह दिया, जाओ। चले जाते हैं।

'क्या रुपए और कपड़े नहीं मिले?'

'अभी नहीं मिले। चौधरी साहब कहते हैं, इस वक्त बचत में रुपए नहीं हैं। फिर आकर ले जाना।'

'कुछ नहीं मिला?'

'एक पैसा भी नहीं। कहते हैं, कुछ बचत नहीं हुई। मैंने सोचा था, कुछ रुपए मिल जाएँगे, तो पढ़ने की किताबें ले लूँगा। सो कुछ न मिला। राह-खर्च भी नहीं दिया। कहते हैं, कौन दूर है, पैदल चले जाओ।'

मुझे ऐसा क्रोध आया कि चलकर चौधरी को खूब आड़े हाथों लूँ। वेश्याओं के लिए रुपए, सवारियाँ, सब कुछ, पर बेचारे रामचंद्र और उनके साथियों के लिए कुछ भी नहीं है। जिन लोगों ने रात को आबादीजान पर दस-दस, बीस-बीस रुपए न्यौछावर किए थे, उनके पास क्या इनके लिए दो-दो चार-चार आने पैसे भी नहीं? पिताजी ने आबादीजान को एक अशफी दी। देखूँ, इनके नाम पर क्या देते हैं। मैं दौड़ा हुआ पिताजी के पास गया। वह कहीं तफ्तीश पर जाने को तैयार खड़े थे। मुझे देखकर बोले, 'कहाँ घूम रहे हो? पढ़ने के वक्त तुम्हें घूमने की सूझती है।'

मैंने कहा- गया था चौपाल। रामचंद्र विदा हो रहे हैं। उन्हें चौधरी साहब ने कुछ नहीं दिया।

'तो तुम्हें इसकी क्या फिक्र पड़ी है?'

'वह जाएँगे कैसे? पास राह खर्च भी तो नहीं है।'

'क्या कुछ खर्च भी नहीं दिया? यह चौधरी साहब की बेइन्साफी है।'

'आप अगर दो रुपए दे दें तो उन्हें दे आऊँ। इतने में शायद वह घर पहुँच जाएँ।'

पिताजी ने तीव्र दृष्टि से देखा और कहा- जाओ, अपनी किताब देखो। मेरे पास रुपए नहीं हैं।

यह कहकर घोड़े पर सवार हो गए। उसी दिन पिताजी पर से मेरी श्रद्धा उठ गई। मैंने फिर उनकी डाँट-डपट की परवाह नहीं की। मेरा दिल कहता, आपको मुझे उपदेश देने का कोई अधिकार नहीं है। मुझे उनकी सूरत से चिढ़ हो गई। वह जो कहते है, मैं ठीक उसका उल्टा करता। यद्यपि इससे मेरी ही हानि हुई, लेकिन मेरा अंतःकरण उस समय विप्लवकारी विचारों से भरा हुआ था।

मेरे पास दो आने पैसे पड़े थे। मैंने पैसे उठा लिए और जाकर शर्माते-शर्माते रामचंद्र को दे दिए। उन पैसों को देखकर रामचंद्र को जितना हर्ष हुआ वह मेरे लिए आशातीत था। टूट पड़े, मानो प्यासे को पानी मिल गया।

यही दो आने पैसे लेकर तीनों मूर्तियाँ विदा हुईं। केवल मैं ही उनके साथ कस्बे के बाहर पहुँचाने आया।

उन्हें विदा करके लौटा, तो मेरी आँखें सजल थीं पर हृदय आनंद से उमड़ा हुआ था।

हमें ही खोजना होगा समाधान

■ बाबूलाल दाहिया

जल समस्या आज विश्वव्यापी समस्या है। शायद इसलिए इसे गंभीरता से लेते हुए राष्ट्रसंघ ने हर वर्ष 22 मार्च को विश्व जल दिवस मनाने का निर्णय लिया होगा कि लोग जाने-समझे और इस समस्या पर गहन चिंतन करें। हमारी पृथ्वी में 71 प्रतिशत जल है पर उसमें पीने और निस्तार हेतु मात्र 2 प्रतिशत मीठा जल ही है, जो झीलों, झरनों, नदियां-तालाबों और धरती के भीतर उपलब्ध है। आम निस्तार के साथ-साथ इसी जल से सिंचाई भी होती है, जो किसी न किसी माध्यम से खेत तक पहुंचाया जाता है। हम अगर अपने मध्य प्रदेश के 30 वर्षों के आंकड़ों की ओर गौर करें, तो यहां कि वर्षा का औसत 900 से 1200 मि.मी. है, जो 20 जून के आस-पास शुरू होकर 25 सितंबर तक समाप्त हो जाता है। प्राचीन काल में यहां अनेक अकाल पड़े, लोग भूख से त्रस्त हुए पर प्यासों मरने की नौबत कभी नहीं आई। कभी-कभार मानसून रूठ जाने पर फसलें सूखी, पर धरती के नीचे का जल भंडार ज्यों का त्यों रहा। यह वही जल था, जो हज़ारों वर्षों से हो रही जलवृष्टि से संचित हुआ था। पर आज सामान्य वर्षा के बावजूद भी हर साल जल संकट आता है। यह जल संकट प्रकृति की सहज प्रक्रिया से नहीं, हमारी करतूतों की देन है। इसलिए इसके निपटने के उपाय भी हमें ही खोजने होंगे। जब हमारा देश आज़ाद हुआ था, तो अक्सर एक नारा सुनने को मिलता था-'रोटी, कपड़ा और मकान। मांग रहा है हिंदुस्तान।'

उस समय अनाज की कमी थी, इसलिए प्राथमिकता के क्रम में रोटी, कपड़ा मकान ही थे। पर आज परिस्थितियां बदल गई हैं, रोटी की अहमियत है, पर वह तीसरे क्रम में। पहला और दूसरा स्थान आज हवा और पानी ले चुके हैं। क्योंकि आज हमारे गोदामों में इतना अनाज भरा हुआ है कि अगर उसे निकाल कर एक बोरे के उपर दूसरा रख दिया जाए, तो वह बोरों की श्रृंखला चंद्रमा तक पहुंच जाएगी पर क्या उस अनुपात में पानी भी है? यह हमें विचार करना होगा। क्योंकि तराजू के दो पलड़े होते हैं और सही माप वह मानी जाती है जिसमें दोनों पलड़े बराबर हों। यदि हम धरती में प्राप्त समस्त मीठे जल को इकाई मानकर अध्ययन करें तो कुल प्राप्त मीठे जल का ढाई प्रतिशत भाग नहाने, पीने आदि दैनिक निस्तार में खर्च होता है। उसका 15 प्रतिशत उद्योग धंधों में और शेष साढ़े बयासी प्रतिशत सिंचाई में। पर न तो निस्तार वाले जल से कटौती संभव है न ही उद्योग धंधे वाले से यदि कटौती होगी, तो साढ़े बयासी प्रतिशत सिंचाई वाले जल से ही संभव है, जिस पर हमें विचार करना होगा। यदि इस जल को एक अन्य आंकड़े से देखा जाए तो प्रतिदिन प्रति व्यक्ति के नहाने-धोने, पीने, शौच क्रिया आदि में 40 लीटर औसत जल खर्च होता है। पर जो भोजन प्रतिदिन दोनों वक्त हमारी थाली में 2000 लीटर पानी खर्च होता है और यह आंकड़ा बढ़ा हमारी आयतित बाहरी अनाजों की खेती से। जबकि हमारे देशी अनाज हज़ारों वर्षों से यहां की जलवायु में रचे-बसे होने के कारण कम वर्षा और ओस में ही पक जाया करते थे। ऋतु से संचालित होने के कारण आगे-पीछे के बोये के साथ-साथ पक जाते थे। हमारी प्राचीन खेती कई पीढ़ियों के अनुभव जन्य ज्ञान की खेती थी। हमारे पूर्वज प्रकृति को तो अपने अनुसार ढाल नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने अपनी खेती को ही प्रकृति के अनुसार ढाल लिया था, फलस्वरूप मिश्रित खेती, अदल-बदल कर खेती, खेती की नमी संचय की क्षमता आधारित खेती आदि कई तरीके अपनाये जाते थे, जिस उचहन खेत में चना और गेहूं बोना होता, उस खेत में आसाढ़ से क्वार तक हर बार बतर पर आने जुताई की जाती, जिससे वर्षा के जल से खेत में पर्याप्त नमी संचित हो जाती। जिन बांधों में गेहूं बोया जाता, उन्हें आषाढ़ से क्वार तक बांध कर उनमें पानी रखा जाता, जिससे खेतों की नमी भी संचित रहती और धरती का जल स्तर भी बढ़ता। पर खेती की नई पद्धति के आ जाने से अनाज का पलड़ा तो वजनी होता जाता है, पर पानी वाला पलड़ा उत्तरोत्तर उटंग होता चला जा रहा है, जो धरती की सेहत के लिए उचित नहीं है। पहले किसान अपने खेत में उस अनाज को उगाता था, जिसे उसका खेत मांगता था, पर अब उस अनाज को उगा रहा है, जिसे बाज़ार मांगता है। अब यदि बाज़ार ने सोयाबीन की मांग कर दी, तो किसान उन बन्धी-बांधों को भी आषाढ़ में ही फोड़कर सोयाबीन बो देता है, जो कभी तालाब की तरह लबालब भरे धरती के जल स्तर बढ़ाने में मददगार थे। जबकि सोयाबीन की खेती पूरी तरह जल संकट को आमंत्रण देने वाली खेती है और एक एकड़ में सोयाबीन बोने का अर्थ है 4000 घन मीटर प्रति एकड़ पानी को

शुरू आषाढ़ से ही नदी-नालों में उड़ेल देना। पर इतना ही नहीं, रही-सही कसर सोयाबीन के पश्चात उसी खेत में बोया जाने वाला बौनी जाति का गेहूं निकाल लेता है, जिसकी चार-पांच सिंचाई में 3-4 सौ फीट गहरे तक का धरती के अंदर का पानी निकाल लिया जाता है। जबकि हमारे देशी गेहूं को अगर एक बार भी सिंचाई हो जाए, तो वह ठोस और चिलकदार उपज दे सकता है। इधर कुछ वर्षों से हर साल धान की भी लोक-लुभावन आयतित किस्में उगाई जाने लगी हैं। वैज्ञानिकों का कथन है कि एक किलो धान उगाने में लगभग 300 लीटर पानी लगता है। यदि यह पानी वर्षा का हुआ, तब तो ठीक है धरती का जलस्तर बढ़ाएगा पर यदि धरती के नीचे से उद्‌वहन कर सींचा जाए, तब तो घाटे का सौदा है कि हम धान उगावें एक किलो और अमूल्य पानी बर्बाद करें तीन हज़ार लीटर। पर यह धानें हर वर्ष घाटे का सौदा ही सिद्ध होती हैं और दिन की गिनती में पकने के कारण पीछे की बोई दो-तीन अतिरिक्त सिंचाई ले लेती है। जबकि देसी किस्में ऋतु से संचालित होने के कारण आगे-पीछे की बोई साथ-साथ पक जाती हैं। इसलिए आज यह समझ लेने का वक्त आ गया है कि वह अनाज हमारे लिए उपयुक्त नहीं है, जो अपने बाज़ार मूल्य से भी अधिक मूल्यवान हमारा पानी बर्बाद कर रहा है।

जब कभी मैं देशी अनाजों की औचित्यता की बातें करता हूं, तो मेरे कई मित्र तर्क प्रस्तुत करने लगते हैं कि पहले अपने देश की जनसंख्या 36 करोड़ थी, आज़ादी के पश्चात बढ़ते-बढ़ते वह एक अरब पार कर गयी है। इस आज़ादी के लिए भोजन भी तो चाहिए? यह सही है कि बढ़ी जनसंख्या को भोजन चाहिए पर क्या बढ़ी जनसंख्या को पानी की आवश्यकता नहीं पड़ेगी? भोजन बिना तो 20-25 दिन तक जिया जा सकता है पर पानी बिना तो एक सप्ताह भी नहीं जिया जा सकता। हम मध्य प्रदेश के निवासी हैं। उत्तर भारत और यहां की परिस्थिति में यह अंतर है कि वहां की नदियां हिम नदी हैं, वर्षा हो न हो बर्फ पिघलने से पानी आएगा और वहां के जल स्तर को सामान्य रखेगा। पर हमारे यहां की नदियां हिम पुत्री नहीं वन पुत्री हैं। हमारे यहां की मशहूर नदी नर्मदा को संस्कृत ग्रंथों में रेवा मेकल सुता के साथ-साथ वनजा यानी वन पुत्री कहा जाता है। पर इन पुत्रियों में पानी तभी आएगा, जब सघन वन होगा। किंतु वन तभी रहेगा, जब हम जल दोहन से कुछ परहेज बरतेंगे। यदि इसी तरह तीन-तीन, चार-चार सौ फीट गहरे तक का पानी उलीचते रहे, तो धरती शुष्क पड़ेगी और पेड़-पौधे सूख जाएंगे और जब घना वन नहीं होगा, तो वर्षा में भी कमी आएगी, क्योंकि जैसे बगैर हवाई अड्डा के हवाई जहाज नहीं उतरते। उसी प्रकार बगैर सघन वन के बादल भी नहीं उतर सकते। इसलिए हमें इस आसन्न संकट से उबरने के लिए कुछ उपाय तो अवश्य ही करने होंगे।

(लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।)

संसार सागर के नायक

पृष्ठ 7 का शेष

देवरुख ब्राह्मण कहलाए। देवरुख ब्राह्मण तेजहीन हुए कि नहीं, लोक निंद्य बने कि नहीं, पता नहीं। लेकिन चितपावन ब्राह्मण अपने क्षेत्र में और देश में भी हर मामले में अपनी विशेष पहचान बनाए रहे हैं।

कहा जाता है कि पुष्करणा ब्राह्मणों को भी तालाब ने ही उस समय समाज में ब्राह्मण का दर्जा दिलाया था। जैसलमेर के पास पोकरन में रहने वाला यह समूह तालाब बनाने का काम करता था। उन्हें प्रसिद्ध तीर्थ पुष्करजी के तालाब को बनाने का काम सौंपा गया था। रेत से घिरे बहुत कठिन क्षेत्र में इन लोगों ने दिन- रात एक करके सुंदर तालाब बनाया। जब वह भरा तो प्रसन्न होकर इन्हें ब्राह्मणों का दर्जा दिया गया। पुष्करणा ब्राह्मणों के यहां कुदाल रूपी मूर्ति की पूजा की जाती रही है।

अपने पूरे शरीर पर राम नाम का गुदना गुदवाने और राम- नाम की चादर ओढ़ने वाले छत्तीसगढ़ के रामनामी तालाबों के अच्छे जानकार थे। मिट्टी का काम राम का ही नाम था इनके लिए। रायपुर, बिलासपुर और रायगढ़ जिलों में फैले इस संप्रदाय के लोग छत्तीसगढ़ क्षेत्र में घूम-घूमकर तालाब खोदते रहे हैं। संभवतः इस घूमने के कारण ही इन्हें बंजारा भी मान लिया गया था। छत्तीसगढ़ में कई गांवों में लोग यह कहते हुए मिल जाएंगे कि उनका तालाब बंजारों ने बनाया था। रामनामी परिवारों में हिंदू होते हुए भी अंतिम संस्कार में अग्नि नहीं दी जाती थी, मिट्टी में दफनाया जाता था, क्योंकि उनके लिए मिट्टी से बड़ा और कुछ नहीं। जीवन- भर राम का नाम लेकर तालाब का काम करने वाले के लिए जीवन के पूर्ण विराम की इससे पवित्र और कौन सी रीति होगी?

आज ये सब नाम अनाम हो गए हैं। उनके नामों का स्मरण करने की यह नाम- माला, गजधर से लेकर रामनामी तक की नाम-माला अधूरी ही है। सब जगह तालाब बनते थे और सब जगह उन्हें बनाने वाले लोग थे। सैकड़ों, हजारों तालाब शून्य में से प्रकट नहीं हुए थे। लेकिन उन्हें बनाने वाले लोग आज शून्य बना दिए गए हैं।

अनुपम मिश्र की अनुपम कृति 'आज भी खरे हैं तालाब' की पुनर्प्रस्तुति

क्रमशः जारी

बैगाओं की बेंवर खेती

■ बाबा मायाराम

मध्य प्रदेश के डिण्डौरी जिले के बैगा आदिवासी पीढ़ियों से बेंवर खेती करते आ रहे हैं। घने जंगलों के बीच बसे और आदिम जनजाति में शुमार बैगाओं की अनोखी बेंवर खेती उनकी पहचान है। इससे उन्हें दाल, चावल, रोटी, हरी सब्जियां और फल मिलते हैं। कड़ी मेहनत करने वाले बैगाओं को पौष्टिक संतुलित भोजन मिलता है। हालांकि बेंवर पर रोक और बाजार के प्रभाव में बैगा एकल फसलों की ओर बढ़ रहे हैं। लेकिन बीज विरासत अभियान बैगाओं को, बेंवर की ओर प्रोत्साहित कर रहा हैं।

बैगाओं के तीज-त्यौहार खेती पर आधारित हैं। जब खेती ठीक से नहीं होती तो वे त्यौहार भी ठीक से नहीं मना पाते। बीज विरासत अभियान के प्रमुख नरेश विश्वास कहते हैं कि अगर बैगाओं की फसल नहीं होती तो वे त्यौहार व नाच भी नहीं करते हैं। लेकिन पिछले कुछ सालों से बेंवर व मिश्रित खेती से उनके जीवन में बदलाव आ गया है। उनके पास खुद के बीज और खुद का अनाज होने लगा है।

बेंवर खेती बिना जुताई की होती है। इसका कारण एक तो यह मान्यता है कि धरती पर हल चलाने से धरती को पीड़ा होगी। वे इसे अपराध भी मानते हैं। दूसरा कारण हल चलाने से भूक्षरण होता है।

कांदाबानी गांव के गोठिया बताते हैं कि गर्मी शुरू होने पर हम खेत में पेड़ों की छोटी-छोटी टहनियों, पत्ते, घास और छोटी झाड़ियों को एकत्र कर बिछा देते हैं। फिर उनमें आग लगा दी जाती है। इसी राख की पतली परत पर बीजों को बिखेर दिया जाता है जब बारिश होती है तो पौधे उग आते हैं। जैसे-जैसे फसलें पक कर तैयार हो जाती हैं, काटते जाते हैं।

कोदो, कुटकी, ज्वार, सलहार (बाजरा) मक्का, सांवा, कांग, कुरथी, राहर, उड़द, कुरेली, बरबटी, तिली जैसे अनाज बेंवर खेती में बोए जाते हैं। लौकी, कुमड़ा, खीरा आदि को भी बोया जाता है। कुल मिलाकर, 16 प्रकार के अनाज को बैगा बोते हैं। इन 16 अनाजों की 56 किस्में हैं।

बैगा आदिवासियों की बेंवर खेती में एक जगह पर एक वर्ष में खेती की जाती है। अगले साल दूसरी जगह पर खेती होती है। इस खेती को स्थानांतरित खेती (शिफिंटग कल्टीवेशन) कहते हैं। हालांकि इस खेती पर प्रतिबंध लगा हुआ है। लेकिन मध्य प्रदेश के बैगाचक इलाके में यह प्रचलन में है। लोग अपने ही खेतों में बेंवर करते हैं। इसका संशोधित रूप मिश्रित खेती को अपना रहे हैं।

बेंवर खेती के प्रचार-प्रसार में लगे नरेश विश्वास कहते हैं कि कुछ वर्ष पहले हमने जब यह अभियान शुरू किया था तब लोगों के पास बेंवर के बीज ही खत्म हो गए थे। हमने बीजों के आदान-प्रदान का काम किया जिससे अब बैगा आदिवासियों के पास बीज उपलब्ध हैं और वे बेंवर खेती कर रहे हैं।

विश्वास कहते हैं कि बेंवर में अधिकांश लोग केवल कुटकी करते थे। उनके पास सलहार नहीं था, बैगा राहर नहीं थी। हमने इसकी तलाश की और फिर बीजों की अदला-बदली की। छत्तीसगढ़ के पहाड़ी कोरवा आदिवासी भी यहां से मड़िया का बीज लेकर गए। कुछ जगह हम समतल जमीन में भी जुताई से मिश्रित खेती करवाने का प्रयास कर रहे हैं।

यह खेती जैविक, हवा और पानी के अनुकूल और मिश्रित है। यह सुरक्षित खेती भी है कि चूंकि इसमें मिश्रित खेती होती है अगर एक फसल मार खा गई तो दूसरी से इसकी पूर्ति हो जाती है। इसमें कीट प्रकोप का खतरा भी नहीं रहता। इसमें रासायनिक खाद की जरूरत नहीं होती।

बैगा आदिवासियों की बेंवर खेती यह खेती संयुक्त परिवार की तरह है। एक फसल दूसरी की प्रतिस्पर्धी नहीं है बल्कि उनमें सहकार है। एक से दूसरी को मदद मिलती है। मक्के के बड़े पौधे कुलथी को हवा से गिरने से बचाते हैं। फल्लीवाले पौधों के पत्तों में नाइट्रोजन मिलती है। ये पौधे अपनी जड़ों के जरिए भूमि से अलग-अलग गहरे से पोषक तत्व लेते हैं। इससे उर्वर शक्ति अधिक होती है। इन अनाजों में शरीर के लिए जरूरी सभी पोषक तत्व होते हैं। रेशे, लौह तत्व, कैल्शियम, विटामिन, प्रोटीन व अन्य खनिज तत्व मौजूद हैं। चावल व गेहूं के मुकाबले इनमें पौष्टिकता अधिक होती है।

इससे दाल, चावल, पेज (सूप की तरह पेय), दाल, सब्जी सब कुछ मिलता है। खाद्य सुरक्षा के साथ पोषण सुरक्षा होती है। मवेशियों को चारा मिलता है।

चपवार गांव की भागवती कहती है कि वह बेंवर खेती में महिलाएं बहुत काम करती हैं। बीजों का रखरखाव, निंदाई, गुड़ाई, कटाई और रखवाली सभी में महिलाएं मदद करती हैं। इसके साथ घर का काम भी करती हैं।

मौसमी बदलाव के कारण जो समस्याएं और चुनौतियाँ आएंगी, उनसे निपटने में भी यह खेती कारगर है। कम बारिश, ज्यादा गर्मी, पानी की कमी और कुपोषण बढ़ने जैसी स्थिति में बेंवर खेती सबसे उपयुक्त है। इस खेती पर किताब लिखने वाले नरेश विश्वास का कहना है कि सूखा अकाल में भी बैगाओं के पास कोई न कोई फसल होती है। उनकी खेती बहुत समृद्ध रही है। इस खेती में मौसमी उतार-चढ़ाव व पारिस्थितिकी हालत को झेलने की क्षमता होती है। इस प्रकार सभी दृष्टियों, खाद्य सुरक्षा, पोषण सुरक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा, जैव विविधता और मौसम बदलाव में उपयोगी और स्वावलंबी है।

साभार

अगस्त के नाम पे हमारी स्मृतियों में दर्ज है हिरोशिमा और नागासाकी। जापान के यह दोनों शहर अमेरिकी सैन्यवाद की मिसालें हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध जब समाप्ति की ओर था तब दुनिया को अपने आणविक हथियारों की धमक सुनाने के लिए अमेरिका ने इन दोनों शहरों पर अणु बम गिराए जिसने इन्हें तबाह कर दिया। इसके दायरे में आने वाली लगभग हर सजीव व निर्जीव वस्तुएं नष्ट हो गईं और दशकों तक विकिरण के प्रभाव से विकृत बच्चे (मनुष्यों व पशुओं के भी) पैदा होते रहे। दुनियाभर में जो लोग परमाणु हथियारों का विरोध करते हैं और परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण इस्तेमाल की बात करते हैं वे भी इससे अछूते नहीं रहे और उसी कथित शांतिपूर्ण प्रयोग की चेर्नोबिल में घटी विध्वंसक घटना इसका उदाहरण है।

मशरूम के आकार के बादल के साये में परमाणु विस्फोट के बाद नागासाकी

■ सूसन सोथर्ड

कोरियाई और चीनी मज़दूर, युद्ध के कैदी, युद्ध के लिए तैयार किये गए अधेड़ और विद्यार्थी जन अपने-अपने कामों पर लौट चुके थे। कुछ हवाई हमलों से बचने के लिए तैयार किये गए शेल्टरों की मरम्मत कर रहे थे तो कुछ सिटी हॉल की खिड़कियों के आगे मशीन गन हमलों से बचाव के लिए रेत की बोरियां लगा रहे थे। मित्सुबिशी खेल मैदान में, आकस्मिक आक्रमण को ध्यान में रखते हुए, बांस के भालों से किया जाने वाला अभ्यास, अभी-अभी ख़त्म हुआ था। नागासाकी मेडिकल कॉलेज में कक्षाएं शुरू ही हुई थीं और शहर की सड़कों पर ट्रामें अपने टेढ़े-मेढ़े बलखाते रास्तों पर चल रही थीं।

एक हफ्ते पहले के हवाई हमलों में घायल हुए सैकड़ों लोगों का इलाज अभी भी नागासाकी के अस्पतालों में चल रहा था, और उत्तरी उराकामी घाटी के टीबी अस्पताल के कर्मचारियों ने आज किसी वजह से अपने मरीज़ों को नाश्ता देने में कुछ देर कर दी थी। एक डॉक्टर, जो जर्मन भाषा में प्रशिक्षित था, खुद से जर्मन में बुदबुदा रहा था, (आज पश्चिमी मोर्चे पर सब खामोश है)। सूवा दरगाह के पास कंक्रीट का शेल्टर, जो हवाई हमले से बचाव के लिए हेडक्वार्टर के रूप में काम में लाया जा रहा था, वहां राज्यपाल नागानो ने अभी-अभी नागासाकी पुलिस अधिकारियों से शहर खाली करने के सन्दर्भ में मीटिंग शुरू की थी। सूरज आसमान में सबसे ऊपर टंगा हुआ था और गर्मी बरसा रहा था। शहर की नब्ज़ पर झींगुरों का संगीत बज रहा था।

आसमान में छः मील ऊपर दो बी-29 (बोइंग विमान) नागासाकी की और बढ़ रहे थे। मेजर स्वीनी और उनके दल को ऊपर से देखने में खासी मुश्क़िल पेश आ रही थी। ऊँचाई से बादलों के पार नीचे देखने पर नागासाकी एक बिंदु के समान दिख रहा था। इसने एक गंभीर समस्या पैदा कर दीथी मेजर स्वीनी को आदेश था कि वे तब तक बम ना गिराएं जब तक कि लक्ष्य- यानि नागासाकी बंदरगाह के पूरब में पुराने शहर का केंद्र ठीक से नज़र ना आ जाये। पर लक्ष्य को ठीक से देख पाने का मतलब था देर तक शहर के ऊपर मंडराते रहना। ईंधन के तेज़ी से ख़त्म होते जाने के कारण अब यह संभव नहीं था। उड़ान से ठीक पहले ईंधन पम्प के ख़राब हो जाने के कारण करीब छह सौ गैलन ईंधन, होते हुए भी इस्तेमाल नहीं हो पा रहा था। साथ ही कोकुरा शहर, जोकि प्राथमिक रूप से निशाने पर था जबकि नागासाकी प्रथमतः एक वैकल्पिक लक्ष्य ही था, के ऊपर चक्कर काटते रहने से अपेक्षा से कहीं अधिक ईंधन खर्च हो गया था।

'बॉक्सकार' के पास अब केवल इतना ही ईंधन बचा था की वह नागासाकी के ऊपर से एक बार उड़ कर ओकिनावा में अमरीकी एयर बेस तक इमरजेंसी लैंडिंग के लिए वापस आ सके। इसके अलावा स्वीनी और उनके सहयोगी, नौसेना में कमांडर फ्रेड ऐशवर्थ को यह पता था कि जापान पर बम को ना इस्तेमाल कर पाने की सूरत में उसे समुद्र में गिरा देने के अलावा कोई और चारा न था क्यूंकि लैंडिंग करते वक्त नाभिकीय विस्फोट होने का खतरा था। आदेशों के विरुद्ध जाते हुए उन्होंने क्षण भर के अंतराल में यह निर्णय लिया की वे बम को राडार के ज़रिये गिराएंगे।

शहर में हवाई हमले की चेतावनी देने वाला अलार्म भी नहीं बजा- संभवतः इसलिए क्यूंकि या तो नागासाकी पर हवाई हमले की निगरानी रखने वाले सिपाही इन जहाज़ों को समय पर देख नहीं पाये या तो उन्हें इतनी ऊँचाई पर उड़ रहे जहाज़ों से एकदम से कोई खतरा महसूस नहीं हुआ। जब कोम्पिरा पहाड़ पर जहाजी हमले से बचाव के लिए तैनात सिपाहियों ने आख़िरकार जहाजों को देखा तो वे खंदकों में कूदकर उनपर निशाना साधने लगे। पर उनके पास गोलियां दागने का भी समय नहीं था और अगर वे गोलियां दागते भी तो उनकी गोलियां अमरीकी जहाजों तक पहुँचती नहीं।

कई मिनटों पहले कुछ नागरिकों ने रेडियो पर यह संक्षिप्त सन्देश सुना था कि पश्चिम की ओर शिमाबारा प्रायद्वीप के ऊपर दो बी-29 विमान उड़ते हुए देखे गए हैं। जब उन्होंने जहाजों को अपनी

ओर बढ़ता सुना और उन्हें सूदूर आकाश में चमकता हुआ पाया तो जल्द ही उन्होंने औरों को चेतावनी देने का प्रयास किया और ऐसे हमलों से बचने के लिए तैयार किये गए शेल्टरों के नीचे सर छुपाने के लिए दौड़ पड़े। तो कुछ अपने घरों, स्कूलों और कुछ काम की जगहों पर खुद को पलंगों और मेजों के नीचे छुपाने लगे। एक डॉक्टर जो एक आप्रेशन करने ही जा रहा था उसने जैसे ही दूर से आ रहे जहाजों की आवाज़ सुनी अपने मरीज़ को छोड़कर खुद को बचाने के लिए जगह ढूंढने लगा। पर नागासाकी के ज्यादातर बाशिंदों के पास किसी भी तरह की कोई सूचना या चेतावनी नहीं थी।

इस समय तक दोनों जहाजों के दल के लोगों ने रक्षात्मक चश्मे पहन लिए थे जो इतने काले थे कि उन्हें अपने हाथ तक साफ़ दिखाई नहीं दे रहे थे। बॉक्सकार पर कप्तान केर्मिट बीहन, जिन पर बम गिराने का जिम्मा था, ने बम गिराने के लिए दरवाज़े खोलने का निर्देश दे दिया था। अब बम गिरने में महज़ तीस सेकंड का वक्त रह गया था। पांच सेकंड बाद उन्हें बादलों के बीच से नागासाकी साफ़ दिखाई दिया और लक्ष्य दिखाई देने पर वे चिल्ला पड़े -मैंने देख लिया! मैंने देख लिया! उन्होंने बम छोड़ दिया। यंत्रवाहक जहाज़ ने एक ही समय पर तीन पैराशूट छोड़े। हर पैराशूट विशिष्ट रूप से बने धातु के डिब्बों से जुड़ा हुआ था जिनमें बेलनाकार टेलीमेट्री यन्त्र रखे थे जिनका काम था विस्फोट का दबाव नापना और आंकड़ों को वापस जहाज़ तक ट्रांस्मिट करना। बॉक्सकार जो अब दस हज़ार पॉउण्ड हल्का हो चुका था झटके से ऊपर उठने लगा, जहाज़ के दरवाज़े बंद हो गए और स्वीनी ने 155 डिग्री के तीखे कोण पर जहाज़ को बांई ओर घुमाया ताकि वे होने वाले विस्फ़ोट की चपेट में ना आ जाएँ।

अरे देखो! कुछ गिर रहा है!

नीचे ज़मीन पर 18 साल के वाडा पुराने शहर के सुदूर पूर्वी कोने पर स्थित होतारुजाया टर्मिनल पर अभी-अभी उतरे थे।

पहाड़ों के दूसरी तरफ अपने परिवार से दूर, नागानो काटाफूचीमाची की अस्थायी मित्सुबिशी फैक्ट्री में काम कर रही थी।

शहर के उत्तर-पश्चिमी कोने में एक रिहाइशी इलाके की पहाड़ियों पर साईकिल से घूमते हुए तानिगुची चिठ्ठियाँ बाँट रहे थे।

सोलह साल के डो-ओह मित्सुबिशी की हथियार फैक्ट्री में अपने वर्कस्टेशन पर पहुँच चुके थे। वे पानी में वार कर सकने वाले टॉरपीडो जांच रहे थे और भोजनावकाश का बेसब्री से इंतज़ार कर रहे थे।

उराकामी नदी के पश्चिमी तरफ़ सड़क के किनारे योशिदा कुंए से पानी भर रहे थे जब उन्होंने ऊपर देखा और औरों की तरह बादलों के बीच फांक से तीन पैराशूट नीचे की ओर उतरते देखे।

वे अपनी याद पर ज़ोर देते हुए बताते हैं कि, 'उन्हें तब रक्का-सान कहा जाता था।' नीचे की ओर उतरते अवरोही छाते। 'मुझे तो लगा था कि वे सामान्य पैराशूट हैं- लगा कि शायद सिपाही नीचे आ रहे हैं।'

'अरे देखो कुछ गिर रहा है' उन्होंने अपने दोस्तों को पुकारा। उन सबने सूरज की तेज़ रौशनी को अपनी हथेलियों से रोकते हुए ऊपर की ओर देखा।

'पैराशूट चुपचाप नीचे उतरते गए, सात्तो (चुपचाप)।' बिना किसी आवाज़, बिना किसी आहट के, एक आशंकारहित ख़ामोशी के साथ।

बहरा कर देने वाला एक धमाका

पांच टन का प्लूटोनियम बम 614 मील प्रति घंटे की रफ़्तार से शहर की ओर बढ़ रहा था। 47 सेकंड बाद एक ज़ोरदार धमाके ने बम के प्लूटोनियम केंद्र को एक चकोतरे के आकार से छोटा करके एक टेनिस बॉल जितना कर दिया। इसके कारण तत्काल प्रभाव से परमाणु विखंडन की क्रिया शुरू हो गयी। अपरिमित ताकत और ऊर्जा के साथ बम उराकामी घाटी और उसके लगभग तीस हज़ार बाशिंदों और मज़दूरों के क़रीब एक तिहाई मील ऊपर फट गया। बम अपने निश्चित लक्ष्य से क़रीब डेढ़ मील की दूरी पर फटा था। ग्यारह बजकर दो मिनट पर आकाश में एक चौंधिया देने वाली चमक फ़ैल गयी। पहाड़ों से करीब दस मील परे ओमुरा नौसेना अस्पताल से भी यह चमक साफ़ नज़र आई थी। इस चमक के बाद एक कड़ाके का विस्फोट हुआ जिसकी शक्ति 21000 टन टीएनटी के बराबर थी। सारा शहर थरथरा गया।

जब बम फटा तब विस्फ़ोट के केंद्र में तापमान सूर्य के केंद्र के तापमान से भी ऊपर पहुँच गया था और उसकी आघात तरंगों की गति ध्वनि की गति से भी अधिक थी। एक मिलीसेकण्ड के दसवें हिस्से में ही वह सारा पदार्थ जिससे बम बना था आयनित गैस में बदल गया और हवा में विद्युत-चुंबकीय तरंगें फ़ैल गयीं। बम के उष्मीय ताप ने एक आग के गोले को जन्म दिया जिसका आतंरिक ताप 540000 डिग्री फ़ारेनहाइट के लगभग था। एक सेकंड के भीतर-भीतर धधकता हुआ आग का गोला 52 फ़ीट से 750 फ़ीट के व्यास तक फ़ैल गया। तीन सेकंड के भीतर-भीतर विस्फोट के नीचे ज़मीन का तापमान 5400 से 7200 डिग्री फ़ारेनहाइट के लगभग पहुँच गया। बम के ठीक नीचे इंफ्रारेड ताप तरंगों के कारण मनुष्य और जानवर जलकर खाक़ हो गए और उनके भीतरी अंग भाप बन गए।

तब तक फैलते हुए आणविक बादल ने सूरज को भी ढँक लिया और इस बीच विस्फ़ोट की सीध में पड़ने वाले दबाव के कारण लगभग पूरी उराकामी घाटी चकनाचूर हो चुकी थी। ज़मीन के बराबर बह रही विस्फ़ोट से पैदा हुई हवाओं ने पूरे इलाक़े में सर्वनाश मचा रखा था। इन हवाओं की गति तीव्रता के हिसाब से पांचवी श्रेणी में रखे जाने वाले चक्रवात से भी ढाई गुना अधिक थी। ये हवाएँ इमारतों को ज़मींदोज़ करती हुई, पौधों, पेड़ों, जानवरों और हज़ारों आदमियों, औरतों और बच्चों को चपेट में लेती हुई भयावह विनाश का मंज़र रच रही थीं। ये हवा अपने आश्रयों से और घरों, फैक्टरियों, स्कूलों, और अस्पताल के बिस्तरों से लोगों को निकालकर उठा-उठाकर बाहर फेंक रही थी। कुछ को इसने दीवालों पर दे मारा तो कुछ गिरी हुई

इमारतों के नीचे चपटे हो गए।

जो खेतों में काम कर रहे थे, ट्रामों में सफ़र कर रहे थे या राशन की दुकानों में लाइनों में खड़े थे उनके भी पैर उखड़ गए और उड़ते हुए मलबे की आँधी में वे कुछ देर में ही मिटटी और पत्थरों के नीचे दफ़्न हो चुके थे। एक लोहे का पुल नदी के प्रवाह की दिशा में अठ्ठाइस इंच खिसक गया था। जैसे-जैसे इमारतें ढहने लगीं नागासाकी मेडिकल कॉलेज के मरीज़ और कर्मचारी खिड़कियों से बाहर कूदने लगे। विस्फ़ोट से क़रीब आधा मील की दूरी पर, लड़ाई में मदद पहुँचाने के लिए तैयार की गयीं हाई स्कूल की लड़कियां, शिरोयामा प्राथमिक विद्यालय की तीसरी मंज़िल से नीचे कूद पड़ीं।

धधकती आग ने लोहे और अन्य धातुओं को पिघला दिया, ईंटों और कंक्रीट की इमारतों को झुलसा दिया, कपड़े जल उठे, हरियाली राख हो गयी, और लोगों के शरीर और विशेषकर शरीर के खुले हुए हिस्से गंभीर रूप से जल गए। विस्फोट से क़रीब एक मील दूर धमाके की ताकत से नौ इंच मोटी ईंट की दीवारों में दरार पड़ गयी और गोली की रफ़्तार से उड़ते कांच के टुकड़े लोगों की पीठों, हाथों, पैरों, और चेहरों में धसने लगे , उनकी मांसपेशियों और अन्य अंगों को चिथड़ा करते हुए। दो मील दूर, हज़ारों लोग भयानक गमी के कारण जलन के दागों से झूझते हुए खँडहर हो चुकी इमारतों में फंसे हुए थे।

यहाँ तक की पांच मील की दूरी तक भी लकड़ी और कांच के नुकीले टुकड़े लोगों के कपड़ों और उनके शरीरों को छलनी कर रहे थे। ग्यारह मील की दूरी पर भी खिड़कियां चूर-चूर हो गयी थीं। इतनी मात्रा में विकिरण मनुष्यों और जानवरों के शरीर में घुस रहा था जितना पहले कभी नहीं हुआ था। बढ़ता हुआ आग का गोला अपनी धमन भट्टी में ढेर सारा मलबा और मिटटी खींच रहा था। पूरे शहर में हाहाकार और शोर फट पड़ा जब इमारतें बुरी तरह थरथराते हुए ज़मींदोज़ होने लगीं।

वह रौशनी अपराजेय थी

'सब कुछ पल भर में हो गया', योशिदा ने याद करते हुए कहा। अभी उन्होंने करीब आधे मील की दूरी पर एक अँधा कर देने वाली चमक को देखा ही था कि एक शक्तिशाली बल ने उन्हें दांयी ओर से मारा और उन्हें हवा में उछाल दिया। 'ताप इतना ज्यादा था कि मैं सुरुम (भुनी हुई मछली) की तरह सिकुड़ गया।' सब कुछ एक सपनीले स्लो मोशन की तरह था। हवा योशिदा को पीछे की ओर उड़ाते हुए खेतों के, सड़क और नहर के पार करीब एक सौ तीस फ़ीट तक ले गयी और फिर उन्हें ज़मीन पर फेंक दिया। वे धान के उथले पानी से भरे खेत में पीठ के बल जा गिरे।

मित्सुबिशी हथियार फैक्ट्री के भीतर, डो-ओह अपने चेहरे से पसीना पोंछ रहे थे और अपने काम पर ध्यान केंद्रित करने की कोशिश कर रहे थे कि- फटाक! उन्होंने एक विशाल नीली-सफ़ेद चमक को इमारत में कौंधते हुए देखा जिसके बाद एक कान सन्न देने वाला धमाका हुआ। उन्हें लगा कि मित्सुबिशी संयंत्र के भीतर कोई टॉरपीडो फट गया है। उन्होंने तुरंत खुद को ज़मीन पर फेंका और अपने सर को अपने हाथों से छुपा लिया। पर तभी पूरी फैक्ट्री उनके ऊपर ही धराशायी हो गयी। छोटी बाँहों वाली शर्ट, ट्राउज़र, टोपी, और घुटनों तक मोज़े पहने तानिगुची घाटी के उत्तर-पश्चिमी कोने में पहाड़ों के बीच साइकिल चला रहे थे कि तभी एक गर्म हवा के तेज़ भभूके ने उन्हें पीछे से पकड़ा और उन्हें आगे की ओर उछालते हुए मुंह के बल ज़मीन पर दे मारा। वे याद करते हैं- 'धरती बहुत ज़ोर से काँप रही थी। मैं बस किसी तरह खुद को बचाये रहा। मुझे डर था की हवा कहीं फिर से मुझे ना उड़ा ले जाए।'

स्कूल जिम से हवाई जहाज़ के पुर्ज़े बनानी वाली फैक्ट्री में बदल दी गयी ईमारत के भीतर नागानो खड़ी थी। यह ईमारत कुछ हद तक सुरक्षित थी क्यूंकि एक तो बम विस्फोट से इसकी दूरी ज्यादा थी दूसरे यह ईमारत पहाड़ों की ओट में थी। 'एक ज़बरदस्त रौशनी कौंधी- पी-क़ाह!!!' वे याद करते हुए कहती हैं। नागानो को भी यही लगा की कोई बम उस ईमारत पर गिर पड़ा है। जैसेकि उसे ट्रेनिंग दी गयी थी वो ज़मीन पर गिर पड़ी, अपने कानों को बंद कर लिया और अपनी आँखों को अंगूठों और उँगलियों से छुपा लिया। वो टिन के टुकड़ों और छत की टाइलों को बाहर हवा में उड़ता और आपस में टकराता हुआ सुन सकती थी।

विस्फ़ोट से दो मील दक्षिण पूर्व होटारुजाया टर्मिनल के लाउंज में वाडा अन्य ड्राइवरों के साथ बैठे हुई थे और पहले हुए एक डिरेलमेंट के बारे में चर्चा कर रहे थे कि तभी उन्होंने रेल के तारों पर बिजली दौड़ती हुई देखी। 'पूरा नागासाकी शहर एक ना बयान की जा सकने वाली चमक में लोप गया था।' एक भीषण विस्फ़ोट ने पूरे स्टेशन को झकझोर कर रख दिया। वाडा और उनके दोस्त मेज़ों और अन्य चीज़ों के नीचे सर छुपाने के लिए दौड़ पड़े। अगले ही क्षण उन्हें महसूस हुआ कि वे हवा में उड़ रहे हैं कि तभी वो ज़मीन पर चित्त पड़े थे। कोई बहुत भारी चीज़ उन पर आ गिरी और वे अचेत हो गए।

लगातार ऊपर उठ रहे मशरुम के आकार के बादल के नीचे नागासाकी शहर का एक बड़ा हिस्सा ग़ायब चुका था। शहर में दसियों हज़ार लोग या तो मर चुके थे या बुरी तरह घायल हो गए थे। होटारुजाया टर्मिनल के फर्श पर गिरे हुए एक लठ्ठ के नीचे वाडा दबे पड़े हुए थे। नागानो हवाई जहाज़ के कल पुर्जे बनाने वाली फैक्ट्री के फ़र्श पर पड़ीं थीं और उनके मुंह में कांच की किरचें और दम घोटने वाली धूल भरी हुई थी। डो-ओह धराशायी हो चुकी मित्सुबिशी फैक्ट्री के मलबे में धुंए से घिरे हुए और घायल पड़े थे। योशिदा, कीचड़ से भरे धान के खेत में लगभग अचेत पड़े थे और उनका चेहरा और शरीर बुरी तरह जल चुके थे। तानिगुची अपनी क्षत-विक्षत साइकिल के पास लगभग जलती हुई सड़क की पटरी को थामे पड़े थे। उन्हें अभी तक पता नहीं था की वे पीछे से बुरी तरह जल चुके हैं। उन्होंने अपनी आँखें उठायीं तो बस इतना ही देख पाये कि दुर्दांत हवा 'एक बच्चे को धूल के कतरे की तरह उड़ा ले गयी।'

साठ सेकंड बीत गए थे।

एक विशाल उबलती हुई कढ़ाही

एक विशाल लहराता हुआ बादल आकाश में सात मील की ऊँचाई तक उठा हुआ था। आसमान से देखने पर, बॉक्सकार के सह-पायलट लेफ्टिनेंट फ्रेडेरिक ओलीवी का ये कहना था की, 'सारा शहर एक विशाल उबलती हुई कढ़ाही जैसा लग रहा था।' विलियम एल लॉरेंस, जोकि मैनहैटन परियोजना के आधिकारिक पत्रकार थे और सहयोगी जहाज़ पर से इस सारे मंज़र को देख रहे थे, उन्होंने फैलते हुए बादल को देखकर कहा कि 'हम एक नया जीव, एक नयी प्रजाति का उदय देख रहे थे, जो हमारी अविश्वास से भरी आँखों के आगे पैदा हो रहा था।' कप्तान बीहान याद करते हैं 'वह नरक का चित्र था, धधकता हुआ, चमकदार नारंगी, लाल और हरा।'

शहर के बाहर जिन लोगों ने रौशनी की इस चमक को देखा और ज़ोरदार धमाके को सुना वे अपने घरों से बाहर निकल आये और नागासाकी के ऊपर उठ रहे नाभिकीय बादल को चमत्कृत से देखने लगे। विस्फोट से कई मील दूर उत्तर की तरफ, ओमुरा की खाड़ी में एक द्वीप पर काम रहे मज़दूर ने इसका कुछ इस तरह वर्णन किया, 'आसमान में भड़कीले रंग फट पड़े थे... मानो आग की लम्बी जिह्वायें आसमान में लपलपा रही थीं।' शहर से पांच मील पूरब की तरफ, इसाहाया में, एक दादी माँ डर रहीं थीं की सूरज धरती पर आ गिरेगा और एक बच्चा, जो आकाश से गिरती राख और कागज़ लपक रहा था उसे बाद में समझ आया की ये उराकामी घाटी के बाशिंदों की राशन की कॉपियों के टुकड़े हैं।

नागासाकी से करीब चार मील दक्षिण पूर्व टोहक्कइ पहाड़ की चोटी पर एक आदमी अपनी ट्रक में लकड़ी लाद रहा था जो याद करता है कि 'वह उस मंज़र की सुंदरता देखकर अवाक रह गया था।' एक विकराल बादल जिसमें लगातार विस्फ़ोट हो रहे थे और हर धमाके के साथ जिसका रंग सफ़ेद से पीला और पीले से लाल होता जा रहा था उसे देखकर वह मजदूर सन्न रह गया था। शहर के किनारों पर बसे मुहल्लों में लोग खिड़कियों से बाहर झाँकने लगे और बढ़ते हुए नाभिकीय बादल को देखने के लिए घरों से बाहर निकल आये। पर जल्द ही दूसरे हमले की आशंका में वे घरों के भीतर घुस गए या कोई और ठिकाना ढूंढने लगे।

शहर के भीतर बम का तूफ़ान थम चुका था और नागासाकी को एक काले और धूल से भरे धुंधलके ने ढँक लिया था। हाइपोसेंटर (ज़मीन पर वह बिंदु जिसके ठीक ऊपर विस्फ़ोट हुआ था) के नज़दीक लगभग सभी भस्म हो गए थे, और जो ज़िंदा थे वे इतनी बुरी तरह जल गए थे कि वे हिलने की स्थिति में भी नहीं थे। हाइपोसेंटर से दूर जो लोग, आदमी, औरतें, और बच्चे बच गए थे वे मलबे से निकलने की कोशिश कर रहे थे और भौचक्के से, डर से जमे हुए, उस शहर को देख रहे थे जो अब नहीं था। विस्फ़ोट के बीस मिनट के बाद, कार्बन की राख के कण और विकिरण के बचे हुए अवशेष आसमान से झर रहे थे और संघनित होकर काली और तैलीय बारिश में बदल गए थे जो पहाड़ों से दो मील पूरब की तरफ निशियामा-माची नाम के इलाके में बरस रही थी।

नागानो किसी तरह फैक्ट्री के फर्श से उठीं कांपती और थरथराती हुई। अपनी आँखों में घुसे कचरे को निकालने की कोशिश करती हुई, मुंह और गले में भरी धूल और कांच की किरचें थूकती हुई, ख़ौफ़ से स्तब्ध। उनके आसपास अधेड़ और नौजवान मजदूर या तो ज़मीन पर दुबके पड़े थे या खड़े हो कर अविश्वास और डर से चारों तरफ़ देख रहे थे। अपनी आँखें ज़रा सा खोलने पर नागानो को यह एहसास हुआ कि वे जहाँ पर हैं वहां कुछ देर और रुकना खतरे से खाली नहीं। वे बाहर भागीं और हवाई हमले से बचाव के लिए बने और उस वक्त लोगों से ठसाठस भरे शेल्टर के नीचे अपने लिए किसी तरह जगह बनाने की कोशिश करने लगीं। वहां वे किसी तरह घुटने मोड़ कर बैठ गयीं और अगले बम के गिरने का इंतज़ार करने लगीं।

'पूरा उराकामी जिला तबाह हो गया!' एक पुरुष मज़दूर ने संतप्त स्वर में उनसे कहा। 'तुम्हारा घर भी जलकर खाक हो चुका होगा!' नागानो वहां से बाहर भागीं और उराकामी घाटी की तरफ़ दौड़ पड़ीं। बाहर फैक्ट्री के पास वाला इलाक़ा एक सघन अँधेरे में डूबा हुआ था और भयावह रूप से कहीं कोई हलचल नहीं थी। विशाल पेड़ टूटकर आधे हो चुके थे, पास के कब्रिस्तान में कब्रों के पत्थर उखड़ गए थे, सड़कें टूटे कांच और मकानों के मलबे से भरी हुई थीं। नन्हीं चिड़ियाँ ज़मीन पर पड़ी हुई थीं, रह रह कर फड़कती हुई। पर जैसी कल्पना नागानो ने की थी उस हिसाब से नुकसान बहुत ज्यादा नज़र नहीं आ रहा था और हालाँकि उन्हें उराकामी घाटी ठीक से नज़र नहीं आ रही थी पर उन्हें लगभग यह यकीन हो चला था कि उनका परिवार सुरक्षित ही होगा।

वे निशियामामाची के दक्षिणी छोर पर नागासाकी स्टेशन की ओर सड़कों पर बेतहाशा दौड़ने लगीं। पूरब की ओर क़रीब एक मील दौड़ते हुए वे लगभग ध्वस्त लकड़ी के घरों और विस्फ़ोट से सीधे प्रभावित इलाक़े से भागते लोगों को पीछे छोड़ती चली जा रही थीं। जैसे सड़क पश्चिम की ओर घूमी नागानो ने 277 सीढ़ियों वाली सत्रहवीं सदी की सूवा दरगाह को सुरक्षित पाया और उसे पीछे छोड़ते हुए फिर काटसुयामा प्रारंभिक विद्यालय, जोकि सिटी हॉल के नज़दीक था, को पार करते हुए अंधाधुंध भागती रहीं। पैंतालीस मिनट बाद नागानो ने आखिरकार उन पहाड़ों को पार कर ही लिया जो उनके और आणविक तबाही के बीच खड़े थे।

उनके सामने नागासाकी स्टेशन की मुख्य ईमारत पूरी तरह ढह चुकी थी।पर अपनी दायीं ओर का मंज़र देखकर तो वे सन्न ही रह गयीं और तब उन्हें यह एहसास हुआ कि जो अफवाहें उन्होंने उराकामी घाटी के बारे में सुनी थीं वे सब सही थीं। जहाँ बस आधे घंटे पहले तक नागासाकी का उत्तरी हिस्सा था वहां मलबे के समुद्र के कुछ ही ऊपर गर्द और धुएं का बादल छाया हुआ था। दर्जनों

शेष पृष्ठ 22 पर

फिर न हो हिरोशिमा, नागासाकी, चेर्नोबिल

■ अफलातून

6 अगस्त 1945 को जापान के हिरोशिमा और 9 अगस्त को नागासाकी शहर पर अमेरिका ने परमाणु बम गिराए थे। स्वीडन के नोबेल पुरस्कार विजेता भौतिकवादी हेनेस आल्फवे ने इसे प्रलयंकारी बीमार मानसिकता का द्योतक बताया था। मेगाटन, मेगावाट की तरह दस लाख मौत के लिए 'मेगाडेथ' शब्द आ गया। हेनेस आल्फवे ने यह भी कहा कि इन्हें 'शस्त्र' या 'हथियार' कहना अनर्थकारी होगा, गलत उपयोग होगा। इन्हें Anhilators – विध्वंसक या सत्यानाशक कहना चाहिए।

बहरहाल, परमाणु उर्जा के कथित शांतिमय प्रयोग की विध्वंसक घटना चेर्नोबिल की यह चर्चा गुजरात के वरिष्ठ गांधीजन कांति शाह के 'चेर्नोबिल की विभीषिका' नामक आलेख के आधार पर प्रस्तुत है।

दुनिया को परमाणु बिजली संयंत्र के राक्षसी स्वरूप का तार्रुफ़ चेर्नोबिल करा गया है। 26 अप्रैल, 1986 को चेर्नोबिल परमाणु संयंत्र का एक रिएक्टर विस्फोट के साथ फटा। 2800 डिग्री सेन्टिग्रेड की गर्मी से उसकी अग्निज्वाला भभक रही थी, रेडियोधर्मी विकिरण उगलती हुई।

दुर्घटना के चार माह बाद उसका पोस्टमार्टम करने के लिए इन्टरनेशनल एटॉमिक एनजी एजेन्सी (IAEA) ने विएना में सम्मेलन आयोजित किया। दुनियाभर के 42 देशों के करीब 500 शीर्षस्थ परमाणु वैज्ञानिकों तथा विशेषज्ञों ने इसमें भाग लिया। रूस के प्रतिनिधिमण्डल की रहनुमाई कर रहे लेगासोव ने विस्तृत विवरण तथा दुर्घटना के वीडियो प्रस्तुत किए। इस वीडियो को देख लंदन के 'ऑब्ज़र्वर' के नुमाइन्दे जेफ़ी ली ने लिखा :

''हम नज़र के सामने परमाणु रिएक्टर को भयंकर रूप से भभक कर जलते हुए देख रहे थे। हमारी साँस अटक गयी थी। सब को हिला देने वाले लमहे थे। परमाणु उद्योग के सर्वोच्च संचालक यहाँ जुटे थे। अब तक कट्टर धार्मिक जुनून की भाँति वे बाँग देते आए थे कि परमाणु संयंत्र सम्पूर्ण सुरक्षित हैं तथा ऐसी दुर्घटना की लेश मात्र संभावना नहीं है। परंतु यहाँ अपनी नजरों के सामने वे दोजख़ के विकराल जबड़ों जैसी दारुण घटना को भयभीत नजरों से निहार रहे थे।''

परमाणु रिएक्टर भीषण विस्फोट के साथ फटा मानो उसके भीतर आधे TNT का बम फटा हो! अमेरिकन पत्रिका 'न्यू साइन्टिस्ट' के शब्दों में ''यह लगभग परमाणु बम फटने जैसा था।'' अमेरिकी साप्ताहिक 'न्यूजवीक' के अनुसार ''हिरोशिमा और नागासाकी पर छोड़े गए परमाणु बम के वक्त जितना विकिरण हुआ था उतना अथवा उससे अधिक विकिरण चेर्नोबिल की दुर्घटना के वक्त फैला था।''

रिएक्टर के अलावा आसपास के तीसेक स्थानों पर आग की प्रचण्ड ज्वाला भभक रही थी। संयंत्र की छत एक विस्फोट के साथ उड़ गयी थी। रेडियोधर्मी पदार्थ चारों तरफ फैल रहा था। वह भी धधक रहा था। नतीजन मानो 'परमाणु आतिशबाजी' हो रही थी। हवा की दिशा के मुताबिक रेडियोधमी परमाणु रज रूस और यूरोप के अन्य देशों में छा रहे थे।

दुनिया को दुर्घटना की सूचना इससे फैले विकिरण ने ही दी। स्वीडन के बाल्टिक सागर के तट पर एक परमाणु संयंत्र स्थापित है। इस संयंत्र से सुरक्षित स्तर से अधिक विकिरण तो नहीं हो रहा है इसकी पड़ताल के लिए करीब चार किलोमीटर दूर 'रेडिएशन डिटेक्टर' स्थापित है। विकिरण की मात्रा प्रति घण्टे ढाई मिलिरेम से नीचे होने पर नीली बत्ती जलती है, ढाई से 100 मिलिरेम तक पीली तथा 100 मिलिरेम से ज्यादा विकिरण फैल रहा हो तब लाल बत्ती जलने लगती है।

28 अप्रैल की सुबह यह डिटेक्टर प्रति घण्टे 10 मिलिरेम दिखाने लगा। तत्काल सुरक्षा के कदम उठाए जाने लगे। संयंत्र बन्द कर दिया गया। परन्तु धीरे-धीरे यह समझ में आया कि यह विकिरण स्वीडन के किसी संयंत्र से नहीं हो रहा है, अन्यत्र कहीं दूर से आ रहा है। ज्यादा जाँच से पता चला कि विकिरण के विस्फोट के पहले चिह्न 27 तारीख़ को दोपहर दो बजे के करीब प्रकट हुए थे। अनुमान लगाया गया कि 26 तारीख़ रात से 27 तारीख़ सुबह के बीच कहीं कोई घटना हुई होनी चाहिए। क्या चीन ने वातावरण में परमाणु परीक्षण कर दिया? परन्तु नहीं, इस विकरण का प्रकार इशारा दे रहा था कि किसी परमाणु संयंत्र से यह हो रहा है। यह भी लगा कि इसका स्रोत सोवियत रूस में है।

स्वीडन ने अमेरिका को सावधान किया। अमेरिका ने उपग्रह द्वारा निरीक्षण करने की अपनी समूची प्रणाली को काम पर लगा दिया। इससे पता चला कि रूस के कीव इलाके में परमाणु संयंत्र में दुर्घटना की संभावना है। पहले अमेरिकी वैज्ञानिक यह मान ही नहीं सके कि इतनी बड़ी दुर्घटना हो सकती है। 29 तारीख़ की भोर में फौजी जासूसी उपग्रह से उस इलाके के फोटो खीचे गए। फोटो देख कर वैज्ञानिक स्तब्ध रह गए! परमाणु संयंत्र की छत उड़ गयी थी। धुँए से आकाश में बादल छा गए। अब छुपा कर रखने लायक कुछ शेष न था। अन्ततः रूस को भी दुर्घटना की बात कबूलनी पड़ी।

रूस ने दुर्घटना के बाद पूरी कार्यक्षमता दिखायी। चेर्नोबिल में तैनात दमकल कर्मी, इन्जीनियर तथा डॉक्टरों ने जान जोखिम में डाल कर विकिरण की बौछार के बीच अपना फर्ज अदा किया। इनमें

शेष पृष्ठ 24 पर

कैसा भोजन पसंद करेंगे जनाब

■ सुनीता नारायण

मेरा स्थानीय सब्जी वाला पॉलीथीन की थैलियों में नींबू पैक करके बेचता है। मैं सोचने लगी कि क्या यह खाद्य सुरक्षा और स्वच्छता के बेहतर मानकों का द्योतक है। आखिर हम जब प्रोसेस्ड फूड की अमीर दुनिया के किसी सुपर मार्केट में जाते हैं, तो नजर आता है कि सारे खाद्य पदार्थ सफाई से पैक किए गए हैं ताकि मनुष्य के हाथ लगने से कोई गंदगी न हो। फिर खाद्य निरीक्षकों की पूरी फौज होती है, जो प्रोसेसिंग कारखाने से लेकर रेस्टोरेंट में परोसे जाने तक हर चीज की जांच करती है। उसूल साफ है : खाद्य सुरक्षा के प्रति जितनी ज्यादा चिंता होगी, क्वालिटी भी उतनी ही अच्छी होगी और परिणाम यह होगा कि इसे लागू करने की कीमत भी उतनी ही ज्यादा होगी। धीरे-धीरे, मगर निश्चित रूप से छोटे उत्पादक बाहर धकेल दिए जाते हैं। भोजन का कारोबार ऐसे ही चलता है। मगर क्या सुरक्षित भोजन का यह मॉडल भारत के लिए ठीक है? यह तो पक्की बात है कि हमें सुरक्षित भोजन चाहिए।

भोजन के माध्यम से कीटनाशकों से संपर्क कई जीर्ण बीमारियों को जन्म देता है। सबसे बढ़िया तरीका तो यह होगा कि हम अपनी थाली को देखें- यह हिसाब लगाएं कि हम क्या और कितना खा रहे हैं- ताकि यह पक्का कर सकें कि कीटनाशकों की सुरक्षित सीमा निर्धारित की जा सके। पोषण प्राप्त करने के लिए हमें थोड़ा जहर तो निगलना होगा मगर इसे स्वीकार्य सीमा में कैसे रखा जा सकता है? इसका मतलब है कि सारे खाद्य पदार्थों के लिए कीटनाशकों के सुरक्षित स्तर के मानक तय करने होंगे।

यह भी साफ है कि हम छोटे उत्पादकों की आड़ में यह नहीं कह सकते कि हमें क्वालिटी और सुरक्षा के सख्त मापदंड नहीं रखने चाहिए। हम यह दलील भी नहीं दे सकते कि हम तो एक गरीब विकासशील देश हैं और हमारी जरूरत तो ज्यादा मात्रा में खाद्यान्न पैदा करना और उसे कुपोषित लोगों की बड़ी संख्या तक पहुंचाना है। हम ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि चाहे हम गरीब हों और ज्यादा से ज्यादा खाद्यान्न पैदा करने और उसे ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाने के दबाव में हों, मगर हम इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकते कि हम खराब भोजन खा रहे हैं जो हमें बीमार कर रहा है। हम कई सारे दोहरे बोझ ढोते हैं। यह उनमें से एक है।

दूसरे दोहरे बोझ का संबंध 'असुरक्षित भोजन की प्रकृति से है। सबसे घातक समस्या मिलावट की है - जब लोग मुनाफे के लिए भोजन में खराब चीजें मिलाते हैं। भारत में यूरिया मिला दूध और रसायनों से रंगी लाल मिर्च तो समस्या का एक छोटा-सा अंश है। हमें पता है कि इसके खिलाफ कारगर कार्रवाई की जरूरत है। मगर यह भी सच है कि ऐसी घटनाएं भारत में ही नहीं होतीं। कुछ वर्षों पहले चीन में मिलेमीन-दूषित दूध ने बच्चों की जानें ली थी। आजकल गौमांस के नाम पर बेचा जा रहा घोड़े का मांस यूरोप को झकझोर रहा है। हमारे शरीर और सेहत से जुड़े इस कारोबार में कदाचारी लोग शामिल हैं।'

चिंता का दूसरा विषय है प्रोसेसिंग के दौरान भोजन में मिलाई जाने वाली चीजों का सुरक्षित होना। यह मिलावट नहीं है क्योंकि यहां जो चीजें मिलाई जाती हैं उन्हें मिलाने की अनुमति है। सवाल यह है कि क्या हम इन चीजों के अन्य दुष्प्रभाव के बारे में जानते हैं? सामान्यतः होता यह है कि विज्ञान इन समस्याओं का पता काफी देर से लगाता है। मसलन, कृत्रिम मीठे पदार्थों को लेकर काफी हो-हल्ला हुआ है। इनमें पहले सेकरीन था और फिर एस्पार्टेम आया। औद्योगिक स्तर पर उत्पादित भोजन में एक समस्या यह भी है कि हरेक वस्तु को निहित स्वार्थों का समर्थन मिलता है। ये निहित स्वार्थ उस चीज को तब तक सुरक्षित बताते हैं, जब तक की उसकी असुरक्षा साबित न हो जाए।

अक्सर हमें हमारे खाद्य पदार्थों में मिलाए गए तत्वों के बारे में ज्यादा पता नहीं होता। जैसे, हम वैनीला यह सोचकर खाते हैं कि आइसक्रीम और केक को सुगंधित करता यह पदार्थ मसालों का असली सम्राट है। हमें पता ही नहीं होता कि अधिकांश वैनीला कृत्रिम रूप से बनाया जाता है और यह रसायन, आप मानें या न मानें, कागज कारखानों के कचरे या कोलतार के घटकों से बनाया जाता

है। यह सस्ता होता है और विभिन्न देशों के खाद्य व औषधि प्रशासन ने इसे मानव उपभोग के लिए स्वीकृत किया है।

तीसरी चुनौती हमारे भोजन में विष की है। ये वे रसायन हैं जो खाद्यान्न उपजाने और प्रसंस्करण के दौरान उपयोग किए जाते हैं। बहुत कम मात्रा में भी ये अस्वीकार्य जहर हैं। भोजन के माध्यम से कीटनाशकों से संपर्क कई जीर्ण बीमारियों को जन्म देता है। सबसे बढ़िया तरीका तो यह होगा कि हम अपनी थाली को देखें - यह हिसाब लगाएं कि हम क्या और कितना खा रहे हैं - ताकि यह पक्का कर सकें कि कीटनाशकों की सुरक्षित सीमा निर्धारित की जा सके। पोषण प्राप्त करने के लिए हमें थोड़ा जहर तो निगलना होगा मगर इसे स्वीकार्य सीमा में कैसे रखा जा सकता है? इसका मतलब है कि सारे खाद्य पदार्थों के लिए कीटनाशकों के सुरक्षित स्तर के मानक तय करने होंगे।

इसके बाद कुछ विष ऐसे हैं, जो भोजन में कदापि नहीं होने चाहिए। उदाहरण के लिए, कुछ वर्षों पहले विज्ञान व पर्यावरण केंद्र (सीएसई) ने पाया था कि भारत के बाजार में मिलने वाले शहद में एंटीबायोटिक औषधियां हैं। कारण यह है कि भारत में औद्योगिक मधुमक्खी पालक मधुमक्खियों को एंटीबायोटिक दवाएं खिलाते हैं - उनकी वृद्धि को बढ़ाने और बीमारियों पर नियंत्रण के लिए एंटीबायोटिक्स का सेवन हमें दवाइयों का प्रतिरोधी बनाता है। सीएसई ने कोशिश करके घरेलू बाजार में शहद के लिए एंटीबायोटिक मापदंड तैयार करवाए। इसमें कोई संदेह नहीं कि छोटे-छोटे शहद उत्पादकों पर इसका प्रतिकूल असर पड़ेगा क्योंकि उनके पास कागजी कार्रवाई और निरीक्षकों को संभालने की क्षमता नहीं है। मगर इसका मतलब यह नहीं हो सकता कि हम अपने भोजन में एंटीबायोटिक के इस्तेमाल को बर्दाश्त करते रहें। क्या इसका मतलब यह है कि हम खाद्य कारोबार में इस तरह के बदलाव करें कि भोजन सुरक्षित भी रहे और जीविकाओं पर आंच भी न आए?

भोजन संबंधी चौथी चुनौती शायद इस सवाल का जवाब दे देगी। भोजन न सिर्फ सुरक्षित होना चाहिए बल्कि पौष्टिक भी होना चाहिए। आजकल दुनिया में भोजन का चेतावनी तंत्र जंक फूड (कचरा खाद्य) के मामले में सक्रिय हो चला है - जंक फूड यानी ऐसा भोजन जिसमें खाली कैलोरियां हैं और जो सेहत के लिए खराब है। इस बात के काफी प्रमाण हैं कि खराब भोजन का सीधा संबंध गैर-संक्रामक बीमारियों (जैसे मधुमेह, दिल की बीमारी, कैंसर) में विस्फोट से है। बहुत हो चुका, कहने का वक्त बहुत पहले आ चुका है।

सवालों के जवाब खाद्य कारोबार के एक अलग मॉडल के बारे में सोचकर मिलेंगे। यह मॉडल सबके लिए एक जैसे औद्योगिक उत्पादन का मॉडल तो नहीं हो सकता। नया मॉडल पोषण, आजीविका और सुरक्षा के सामाजिक उद्देश्यों को मुनाफे से ऊपर रखने पर आधारित होना चाहिए। यदि हम इस बात को सही समझ जाएं, तो सही भोजन खाएंगे।

साभार : सामयिक वार्ता, मई 2013

परमाणु विस्फोट के बाद नागासाकी

पृष्ठ 19 का शेष

मुहल्लों के निशान के नाम पर उलझे हुए बिजली के तार और इक्का-दुक्का चिमनीयाँ ही बची थीं। नागासाकी स्टेशन के पास नदी के किनारे जो बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ थीं वे ध्वस्त हो कर स्टील के खांचों और लठ्ठों के ढेर में बदल गयीं थीं। सुरक्षित बच गए एक आदमी के शब्दों में, ट्राम की पटरियां 'खाए हुए च्युइंगम' की तरह लग रही थीं।

धुंए की चादर ओढ़ कर आये विनाश को देखकर लगा रहा था कि सड़कें तो यहाँ कभी थी ही नहीं। जल कर कोयला हो चुकी लाशों से ज़मीन पटी पड़ी थी। बचे हुए लोग बर्बादी के अम्बार पर गिरते पड़ते दर्द से कराह रहे थे। उनकी तव्वा फटे कपड़ों की तरह उनके जिस्म से लटक रही थी। कुछ पागलों की तरह चीखते-चिल्लाते भाग रहे थे 'भागो! बचो!' एक माँ जिसके कपड़े तार-तार हो चुके थे वो नंगे पाँव मलबे पर दौड़ती हुई अपने बेटे को गुहार रही थी। हालाँकि ज्यादातर लोग पूरी तरह खामोश थे। कुछ तो जहाँ खड़े थे वहीं गिर कर मौत के पानी में जम गए थे।

नागानो का घर वहां से उत्तर-पश्चिमी दिशा में करीब आधा मील दूर था यानि किसी सामान्य दिन पर ज्यादा से ज्यादा 10 मिनट का रास्ता। उस दिशा की ओर उम्मीद से निहारते हुए नागानो अपनों के निशान तलाश रही थीं। पर वहां कुछ नहीं था- ना इमारतें, ना पेड़, और जहाँ उन्होंने आखिरी बार अपनी माँ, छोटे भाई और बहन को देखा था वहां ज़िन्दगी का कोई चिन्ह नहीं था। उनकी आँखें बेतहाशा घर जाने का कोई रास्ता तलाश रही थीं पर अथाह बर्बादी और नाचती हुई आग ने हर रास्ता रोक रखा था। गहरे आघात से टूटी हुई और विवश नागानो, नागासाकी स्टेशन के सामने खड़ी थीं, बिल्कुल अकेली और अपने अगले कदम को लेकर पूरी तरह असहाय और असमर्थ।

अनुवाद - सौम्य मालवीय

हिंदुस्तान के आज़ाद होने की खुशी के साथ ही एक दर्द भी जन्मा बंटवारे का। इतिहास में मानवीय त्रासदी की ऐसी कोई मिसाल नहीं जिसमें लाखों-करोड़ों लोगों की पहचान रातों-रात बदल गई। जिसमें लाखों-करोड़ों लोगों के काफिले हफ्ता-दर-हफ्ता सरहद के इस पार या उस पार धकेले जाते रहे। इस त्रासदी को रेखांकित करती यह छोटी सी कहानी।

रावी पार

■ **गुलजार**

पता नहीं दर्शन सिंह क्यूं पागल नहीं हो गया? बाप घर पे मर गया और मां बचे-खुचे गुरूद्वारे में खो गयी और शाहनी ने एक साथ दो बच्चे जन दिये। दो बेटे, जुड़वां। उसे समझ नहीं आता था कि वह हंसे या रोये! इस हाथ ले उस हाथ दे का सौदा किया था किस्मत ने।

सुनते थे आज़ादी आ चुकी है या आ रही है, टोडरमल कब पहुंचेगी पता नहीं चलता था। हिंदू सिख सब छुपते-छुपते गुरूद्वारे में जमा हो रहे थे। शाहनी दिन-रात दर्द से कराहती रहती थी। आखरी दिन थे जचकी के और पहली-पहली औलाद।

दर्शन सिंह रोज़ नई-नई खबरें लाता था, फसादात की। बाप ढांढस देता।

''कुछ नहीं होगा बेटा, कुछ नहीं होगा। अभी तक किसी हिन्दू-सिख के मकान पर हमला हुआ क्या?''

''गुरूद्वारे पर तो हुआ है ना भापाजी। दो बार आग लग चुकी है।''

''और तुम लोग वहीं जाकर जमा होना चाहते हो।''

इस बात पर दर्शन सिंह चुप हो जाता। पर जिसे देखो वही घर छोड़ कर गुरूद्वारे में जमा हो रहा था।

''एक जगह इकट्ठा होने से बड़ा हौसला होता है भापाजी। अपनी गली में तो अब कोई हिन्दू या सिख नहीं रह गया। बस हमीं हैं अकेले।''

दस पंद्रह दिन पहले की बात थी, रात के वक्त भापाजी के गिरने की आवाज़ हुई, आंगन में और सब उठ गये। दूर गुरूद्वारे की तरफ से ''बोले सो निहाल।'' के नारे सुनाई दे रहे थे। भापाजी की उसी से आंख खुल गयी थी, और वह छत पर देखने चले गये। सीढ़ियां उतरते पांव फिसला और बस आंगन में पड़ी कुदाल सर में घुस गयी थी।

किसी तरह भापाजी के संस्कार पूरे किये और जो कुछ मालियत थी, एक तकिये में भरी, और बाकी तीनों ने गुरूद्वारे में जाकर पनाह ली, गुरूद्वारे में खौफजदा लोगों की कमी नहीं थी इसलिए हौसला रहता था, अब उसे डर नहीं लगता था। दर्शन सिंह कहता-

''हम अकेले थोड़े ही हैं, और कोई नहीं तो वाहेगुरू के पास तो हैं।''

नौजवान सेवादारों का जत्था दिन भर काम में जुटा रहता। लोगों ने अपने-अपने घरों से जितना भी आटा, दाल, घी था उठवा लिया था। लंगर दिन-रात चलता था मगर कब तक? यह सवाल सबके दिलों में था। लोग उम्मीद करते थे कि सरकार कोई कुमुक भेजेगी।

''कौन सी सरकार'' एक पूछता ''अंग्रेज़ तो चले गये।''

''यहां पाकिस्तान तो बन गया है लेकिन पाकिस्तान की सरकार नहीं बन पाई है अभी।''

''सुना है मिलिट्री घूम रही है, हर तरफ और अपनी हिफाज़त में शरणार्थियों के काफिले बॉर्डर तक पहुंचा देती है।''

''शरणार्थी? वह क्या होता है।''

''रेफ्यूजी''

''यह लफ्ज़ पहले तो कभी नहीं सुने थे।''

दो-तीन परिवारों का एक जत्था जिनसे दबाव बर्दाश्त नहीं हुआ निकल पड़ा।

''हम तो चलते हैं, स्टेशन पर सुना है ट्रेन चल रही है। यहां भी कब तक बैठे रहोगे?''

''हिम्मत तो करनी पड़ेगी भई! वाहेगुरू मोढ़ो (कंधों) पर बिठाकर तो नहीं ले जाएगा ना।''

एक और ने गुरूबानी का हवाला दिया।

''नानक नाम जहाज है, जो चढ़े सो उतरे पार।

कुछ लोग निकल जाते तो खला का एक बुलबुला-सा बन जाता माहौल में। फिर कोई और आ जाता तो बाहर की खबरों से बुलबुला फूट जाता।

''स्टेशन पर तो बहुत बड़ा कैम्प लगा हुआ है जी''।

''लोग भूख से भी मर रहे हैं और खा-खा के भी! बीमारी फैलती जा रही है।''

पांच दिन पहले एक ट्रेन गुजरी थी यहां से, तिल रखने को भी जगह नहीं थी। लोग छतों पर लदे हुए थे।

सुबह संक्रांत की थी। गुरूद्वारे में दिन-रात पाठ चलता रहता था। बड़ी शुभ घड़ी में शाहनी ने अपने जुड़वां बेटों को जन्म दिया। एक तो बहुत ही कमज़ोर पैदा हुआ। बचने की उम्मीद भी नहीं थी लेकिन शाहनी ने नाभि के जोर से बांधे रखा उसे।

उसी रात किसी ने कह दिया।

''स्पेशल ट्रेन आई है, रेफ्यूजियों को लेने, निकल चलो।''

एक बड़ा सा हुजूम रवाना हो गया गुरूद्वारे से। दर्शन सिंह भी। शाहनी कमज़ोर थी बहुत लेकिन बेटों के सहारे चलने को तैयार हो गयी। मां ने हिलने से इन्कार कर दिया।

''मैं आ जाऊंगी बेटा! अगले किसी काफिले के साथ आ

जाऊंगी। तू बहू और मेरे पोते को संभाल के निकल जा।''

दर्शन सिंह ने बहुत जिद की तो ग्रंथी ने समझाया। सेवादारों ने हिम्मत दी।

''निकल जाओ सरदारजी। एक-एक करके बस बॉर्डर पार पहुंच जाएंगे बीजी हमारे साथ आ जाएंगी।''

दर्शन सिंह निकल पड़ा सबके साथ। ढक्कन वाली एक बंत की टोकरी में डाल के बच्चों को यूं सर पे उठा लिया जैसे परिवार का खोंचा लेकर निकला हो।

स्टेशन पर गाड़ी थी, लेकिन गाड़ी में जगह नहीं थी। छत पर लोग घास की तरह उगे हुए थे।

बेचारी नई-नई नहीफ-व-नजार मां और नोजाइदा बच्चों को देख कर लोगों ने छत पर चढ़ा लिया और जगह दे दी।

करीब दस घंटे बाद गाड़ी में ज़रा सी हरकत हुई। शाम बड़ी सुर्ख थी लहूलहान, तपा हुआ, तमतमाया हुआ चेहरा। शाहनी की छातियां निचुड़ कर छिलका हो गयीं। एक बच्चे को रखती तो दूसरा उठा लेती। मैले-कुचैले कपड़ों में लिपटे दो बच्चों की पोटलियां, लगता था किसी कूड़े के ढेर से उठा लाए हैं।

कुछ घंटों बाद गाड़ी रात में दाखिल हुई तो दर्शन सिंह ने देखा एक बच्चे के हाथ-पांव तो हिलते दिख रहे थे, कभी-कभी रोने की आवाज़ भी होती थी, लेकिन दूसरा बिल्कुल साकित था। पोटली में हाथ डालकर देखा तो कब का ठंडा हो चुका था।

दर्शन सिंह जो फूट-फूट के रोया तो आस-पास के लोगों को भी मालूम हो गया। सबने चाहा कि शाहनी उस बच्चे को लें, लेकिन वह तो पहले ही पथरा चुकी थी। टोकरी को झप्पा मार के बैठ गयी।

''नहीं, भाई के बगैर दूसरा दूध नहीं पीता।''

बहुत कोशिश के बावजूद शाहनी ने टोकरी नहीं छोड़ी।

ट्रेन दस बार रूकी, दस बार चली

लोग अंधेरे में अंदाज़े ही लगाते रहते।

''बस जी खैराबाद निकल गया।''

''यह तो गुजरांवाला है जी।''

बस एक घंटा और। लाहौर आया कि समझो पहुंच गये हिंदुस्तान जोश में लोग नारे भी लगाने लगे थे।

''हर हर महादेव।''

''जो बोले सो निहाल।''

गाड़ी एक पुल पर चढ़ी, तो लहर सी दौड़ गयी।

''रावी आ गया जी।''

''रावी है। लाहौर आ गया।''

इस शोर में किसी ने दर्शन सिंह के कान में फुसफुसाकर कहा।

''सरदारजी! बच्चे को यहीं फेंक दो रावी में उसका कल्याण हो जाएगा। उस पार ले जाके क्या करोगे?''

दर्शन सिंह ने धीरे से टोकरी दूर खिसका ली। और फिर यकलख्त ही पोटली उठाई और वाहे गुरू कहकर रावी में फेंक दी।

अन्धेरे में हल्की सी आवाज़ सुनाई दी किसी बच्चे की। दर्शन सिंह ने घबराकर देखा शाहनी की तरफ। मुर्दा बच्चा शाहनी की छाती से लिपटा हुआ था! फिर से एक शोर का बगाला उठा-

''वाघा! वाघा!''

''हिन्दुस्तान ज़िन्दाबाद!''

फिर न हो हिरोशिमा, नागासाकी, चेर्नोबिल

पृष्ठ 20 का शेष

से अधिकतर विकिरण जनित बीमारियों के शिकार बने अथवा उनसे मारे गए।

चेर्नोबिल के पास के कस्बे प्रिप्यात की 45 हजार आबादी को एक हजार बसों में मात्र तीन घण्टे में हटा दिया गया। इन्हें गृहस्थी का पूरा सामान छोड़ कर जाना पड़ा क्योंकि विकिरण से दूषित हो कर वह मानव उपयोग के लायक नहीं रह गया था।

इसके बाद संयंत्र के केन्द्र से 300 वर्ग मील का इलाका भी खाली करा दिया गया। 90 हजार लोग हटाए गए। इस प्रकार कुल 1,35,000 लोगों को हटा कर बावन नगरों में बसाया गया।

यह 300 वर्ग मील का क्षेत्र मनुष्य के रहने लायक नहीं रह गया। दुर्घटना के बाद के दिनों में इस क्षेत्र में विकिरण सामान्य से ढाई हजार गुना अधिक हो गया था। हजारों एकड़ जमीन, वृक्ष विकिरण से दूषित हो गए।

विकिरण हजारों मील दूर फ्रांस व इंग्लैंड तक भी फैला। विकिरण से दूषित साग-सब्जियां, दूध, मछलियां, मांस वगैरह नष्ट करने पड़े। इतना ही नहीं उस समय दूषित चारा अथवा दूषित भूमि पर बाद में उगे चारे को जिन पशुओं ने खाया उनके दूध में भी विकिरण का भारी असर था। योरोप के देशों में ऐसे अन्न आहार पर प्रतिबन्ध लगाया गया।

चेर्नोबिल रिएक्टर की आग 12 दिन तक काबू में नहीं आई थी। इसके बाद पाँच हजार टन सीमेन्ट, बालू, सीसा, मिट्टी, आदि ऊपर से डाल कर उसे पाटा गया। आस-पास छोटी-बड़ी आग लगी रही तथा हजारों टन सीमेन्ट आदि के नीचे दबा रिएक्टर अंदर-अंदर खदबदाता रहा। चेर्नोबिल में जो घटित हुआ, वह कहीं भी, कभी भी हो सकता है। चेर्नोबिल के बाद जर्मनी के लोगों की जुबान पर एक नारा चढ़ गया था : 'चेर्नोबिल इज़ एवरीव्हेयर!' चेर्नोबिल यत-तत्र-सर्वत्र है।

***isd* इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस, 62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन 011-26177904, 46025219 टेलीफैक्स 011-26177904, ईमेल : notowar.isd@gmail.com / वेबसाइट : isd.net.in

केवल सीमित वितरण के लिए